

अध्याय 2

उत्तर की पर्वत-श्रेणियों के बीच एक छोटा-सा रमणीक गांव है। सामने गंगा किसी बालिका की भांति हंसती, उछलती, नाचती, गाती, दौड़ती चली जाती है। पीछे ऊंचा पहाड़ किसी वृद्ध योगी की भांति जटा बढ़ाए शांत, गंभीर, विचारमग्न खड़ा है। यह गांव मानो उसकी बाल-स्मृति है, आमोद-विनोद से रंजित, या कोई युवावस्था का सुनहरा मधुर स्वप्न। अब भी उन स्मृतियों को हृदय में सुलाए हुए, उस स्वप्न को छाती से चिपकाए हुए है।

इस गांव में मुश्किल से बीस-पच्चीस झोंपड़े होंगे। पत्थर के रोड़ों को तले-ऊपर रखकर दीवारें बना ली गई हैं। उन पर छप्पर डाल दिया गया है। द्वारों पर बनकट की टट्टियां हैं। इन्हीं काबुकों में इस गांव की जनता अपने गाय-बैलों, भेड़-बकरियों को लिए अनंत काल से विश्राम करती चली आती है।

एक दिन संध्या समय एक सांवला-सा, दुबला-पतला युवक मोटा कुर्ता, ऊंची धोती और चमरौधो जूते पहने, कंधो पर लुटिया-डोर रखे बगल में एक पोटली दबाए इस गांव में आया और एक बुढ़िया से पूछा-क्यों माता, यहां परदेशी को रात भर रहने का ठिकाना मिल जाएगा-

बुढ़िया सिर पर लकड़ी का गट्टा रखे, एक बूढ़ी गाय को हार की ओर से हांकती चली आती थी। युवक को सिर से पांव तक देखा, पसीने में तर, सिर और मुंह पर गर्द जमी हुई, आंखें भूखी, मानो जीवन में कोई आश्रय ढूंढता फिरता हो। दयार्द्र होकर बोली-यहां तो सब रैदास रहते हैं, भैया ।

अमरकान्त इसी भांति महीनों से देहातों का चक्कर लगाता चला आ रहा है। लगभग पचास छोटे-बड़े गांवों को वह देख चुका है, कितने ही आदमियों से उसकी जान-पहचान हो गई है, कितने ही उसके सहायक हो गए हैं, कितने ही भक्त बन गए हैं। नगर का वह सुकुमार युवक दुबला तो हो गया है पर धूप और लू, आंधी और वर्षा, भूख और प्यास सहने की शक्ति उसमें प्रखर हो गई है। भावी जीवन की यही उसकी तैयारी है, यही तपस्या है। वह ग्रामवासियों की सरलता और सहृदयता, प्रेम और संतोष से मुग्ध हो गया है। ऐसे सीधे-सादे, निष्कपट मनुष्यों पर आए दिन जो अत्याचार होते रहते हैं उन्हें देखकर उसका खून खौल उठता है। जिस शांति की आशा उसे देहाती जीवन की ओर खींच लाई थी, उसका यहां नाम भी न था। घोर अन्याय का राज्य था और झंडा उठाए फिरती थी।

अमर ने नम्रता से कहा-मैं जात-पांत नहीं मानता, माताजी जो सच्चा है, वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है जो दगाबाज, झूठा, लंपट हो वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं। लाओ, लकड़ियों का गट्टा मैं लेता चलूं।

उसने बुढ़िया के सिर से गट्टा उतारकर अपने सिर पर रख लिया।

बुढ़िया ने आशीर्वाद देकर पूछा-कहां जाना है, बेटा-

'यों ही मांगता-खाता हूं माता, आना-जाना कहीं नहीं है। रात को सोने की जगह तो मिल जाएगी?'

'जगह की कौन कमी है भैया, मंदिर के चौतरे पर सो रहना। किसी साधु-संत के फेरे में तो नहीं पड़ गए हो- मेरा भी एक लड़का उनके जाल में फंस गया। फिर कुछ पता न चला। अब तक कई लड़कों का बाप होता।'

दोनों गांव में पहुंच गए। बुढ़िया ने अपनी झोपड़ी की टट्टी खोलते हुए कहा-लाओ, लकड़ी रख दो यहां। थक गए हो, थोड़ा-सा दूध रखा है, पी लो। और सब गोई तो मर गए, बेटा यही गाय रह गई है। एक पाव भर दूध दे देती है। खाने

को तो पाती नहीं, दूध कहां से दे।

अमर ऐसे सरल स्नेह के प्रसाद को अस्वीकार न कर सका। झोपड़ी में गया तो उसका हृदय कांप उठा। मानो दरिद्रता छाती पीट-पीटकर रो रही है। और हमारा उन्नत समाज विलास में मग्न है। उसे रहने को बंगला चाहिए सवारी को मोटर। इस संसार का विध्वंस क्यों नहीं हो जाता।

बुढ़िया ने दूध एक पीतल के कटोरे में उंडेल दिया और आप घड़ा उठाकर पानी लाने चली। अमर ने कहा-मैं खींचे लाता हूं माता, रस्सी तो कुएं पर होगी-

'नहीं बेटा, तुम कहां जाओगे पानी भरने- एक रात के लिए आ गए, तो मैं तुमसे पानी भराऊं?'

बुढ़िया हां, हां, करती रह गई। अमरकान्त घड़ा लिए कुएं पर पहुंच गया। बुढ़िया से न रहा गया। वह भी उसके पीछे-पीछे गई।

कुएं पर कई औरतें पानी खींच रही थीं। अमरकान्त को देखकर एक युवती ने पूछा-कोई पाहुने हैं क्या, सलोनी काकी-बुढ़िया हंसकर बोली-पाहुने होते, तो पानी भरने कैसे आते तेरे घर भी ऐसे पाहुने आते हैं-

युवती ने तिरछी आंखों से अमर को देखकर कहा-हमारे पाहुने तो अपने हाथ से पानी भी नहीं पीते, काकी ऐसे भोले-भाले पाहुने को मैं अपने घर ले जाऊंगी।

अमरकान्त का कलेजा धक-धक-से हो गया। वह युवती वही मुन्नी थी, जो खून के मुकदमे से बरी हो गई थी। वह अब उतनी दुर्बल, उतनी चिंतित नहीं है। रूप माधुर्य है, अंगों में विकास, मुख पर हास्य की मधुर छवि। आनंद जीवन का तत्व है। वह अतीत की परवाह नहीं करता पर शायद मुन्नी ने अमरकान्त को नहीं पहचाना। उसकी सूरत इतनी बदल गई है। शहर का सुकुमार युवक देहात का मजूर हो गया है।

अमर झेंपते हुए कहा-मैं पाहुना नहीं हूं देवी, परदेशी हूं। आज इस गांव में आ निकला। इस नाते सारे गांव का अतिथि हूं।

युवती ने मुस्कराकर कहा-तब एक-दो घड़ों से पिंड न छूटेगा। दो सौ घड़े भरने पड़ेंगे, नहीं तो घड़ा इधर बढ़ा दो। झूठ तो नहीं कहती, काकी।

उसने अमरकान्त के हाथ से घड़ा ले लिया और चट फंदा लगा, कुएं में डाल, बात-की-बात में घड़ा खींच लिया।

अमरकान्त घड़ा लेकर चला गया, तो मुन्नी ने सलोनी से कहा-किसी भले घर का आदमी है, काकी देखा कितना शरमाता था। मेरे यहां से अचार मंगवा लीजियो, आटा-वाटा तो है-

सलोनी ने कहा-बाजरे का है, गेहूं कहां से लाती-

'तो मैं आटा लिए आती हूं। नहीं, चलो दे दूं। वहां काम-धंधो में लग जाऊंगी, तो सुरति न रहेगी।'

मुन्नी को तीन साल हुए मुखिया का लड़का हरिद्वार से लाया था। एक सप्ताह से एक धर्मशाला के द्वार पर जीर्ण दशा में पड़ी थी। बड़े-बड़े आदमी धर्मशाला में आते थे, सैकड़ों-हजारों दान करते थे पर इस दुखिया पर किसी को दया न आती थी। वह चमार युवक जूते बेचने आता था। इस पर उसे दया आ गई। गाड़ी पर लाद कर घर लाया। दवा-दारु होने लगी। चौधरी बिगड़े, यह मुर्दा क्यों लाया पर युवक बराबर दौड़-धूप करता रहा। वहां डॉक्टर-वै? कहां थे- भभूत

और आशीर्वाद का भरोसा था। एक ओझे की तारीफ सुनी, मुर्दों को जिला देता है। रात को उसे बुलाने चला, चौधरी ने कहा-दिन होने दो तब जाना। युवक न माना, रात को ही चल दिया। गंगा चढ़ी हुई थी उसे पार जाना था। सोचा, तैरकर निकल जाऊंगा, कौन बहुत चौड़ा पाट है। सैकड़ों ही बार इस तरह आ-जा चुका था। निशंक पानी में घुस पड़ा पर लहरें तेज थीं, पांव उखड़ गए, बहुत संभलना चाहा पर न संभल सका। दूसरे दिन दो कोस पर उसकी लाश मिली एक चट्टान से चिमटी पड़ी थी। उसके मरते ही मुन्नी जी उठी और तब से यहीं है। यही घर उसका घर है। यहां उसका आदर है, मान है। वह अपनी जात-पांत भूल गई, आचार-विचार भूल गई, और ऊंच जाति ठकुराइन अछूतों के साथ अछूत बनकर आनंदपूर्वक रहने लगी। वह घर की मालकिन थी। बाहर का सारा काम वह करती, भीतर की रसोई-पानी, कूटना-पीसना दोनों देवरानियां करती थीं। वह बाहरी न थी। चौधरी की बड़ी बहू हो गई थी।

सलोनी को ले जाकर मुन्नी ने थाल में आटा, अचार और दही रखकर दिया पर सलोनी को यह थाल लेकर घर जाते लाज आती थी। पाहुना द्वार पर बैठा हुआ है। सोचेगा, इसके घर में आटा भी नहीं है- जरा और अंधेरा हो जाय, तो जाऊं।

मुन्नी ने पूछा-क्या सोचती हो काकी-

'सोचती हूं, जरा और अंधेरा हो जाय तो जाऊं। अपने मन में क्या कहेगा?'

'चलो, मैं पहुंचा देती हूं। कहेगा क्या, क्या समझता है यहां धान्नासेठ बसते हैं- मैं तो कहती हूं, देख लेना, वह बाजरे की ही रोटियां खाएगा। गेहूं की छुएगा भी नहीं।'

दोनों पहुंचीं तो देखा अमरकान्त द्वार पर झाड़ू लगा रहा है। महीनों से झाड़ू न लगी थी। मालूम होता था, उलझे-बिखरे बालों पर कंधी कर दी गई है।

सलोनी थाली लेकर जल्दी से भीतर चली गई। मुन्नी ने कहा-अगर ऐसी मेहमानी करोगे, तो यहां से कभी न जाने पाओगे।

उसने अमर के पास जाकर उसके हाथ से झाड़ू छीन ली। अमर ने कूड़े को पैरों से एक जगह बटोर कर कहा-सगाई हो गई, तो द्वार कैसा अच्छा लगने लगा-

'कल चले जाओगे, तो यह बातें याद आएंगी। परदेसियों का क्या विश्वास- फिर इधर क्यों आओगे?'

मुन्नी के मुख पर उदासी छा गई।

'जब कभी इधर आना होगा, तो तुम्हारे दर्शन करने अवश्य आऊंगा। ऐसा सुंदर गांव मैंने नहीं देखा। नदी, पहाड़, जंगल, इसकी भी छटा निराली है। जी चाहता है यहीं रह जाऊं और कहीं जाने का नाम न लूं।'

मुन्नी ने उत्सुकता से कहा-तो यहीं रह क्यों नहीं जाते- मगर फिर कुछ सोचकर बोली-तुम्हारे घर में और लोग भी तो होंगे, वह तुम्हें यहां क्यों रहने देंगे-

'मेरे घर में ऐसा कोई नहीं है, जिसे मेरे मरने-जीने की चिंता हो। मैं संसार में अकेला हूं।'

मुन्नी आग्रह करके बोली-तो यहीं रह जाओ, कौन भाई हो तुम-

'यह तो मैं बिलकुल भूल गया, भाभी जो बुलाकर प्रेम से एक रोटी खिला दे वही मेरा भाई है।'

'तो कल मुझे आ लेने देना। ऐसा न हो, चुपके से भाग जाओ।'

अमरकान्त ने झोपड़ी में आकर देखा, तो बुढ़िया चूल्हा जला रही थी। गीली लकड़ी, आग न जलती थी। पोपले मुंह में डुंक भी न थी। अमर को देखकर बोली-तुम यहां धुएं में कहां आ गए, बेटा- जाकर बाहर बैठो, यह चटाई उठा ले जाओ।

अमर ने चूल्हे के पास जाकर कहा-तू हट जा, मैं आग जलाए देता हूं।

सलोनी ने स्नेहमय कठोरता से कहा-तू बाहर क्यों नहीं जाता- मरदों का इस तरह रसोई में घुसना अच्छा नहीं लगता।

बुढ़िया डर रही थी कि कहीं अमरकान्त दो प्रकार के आटे न देख ले। शायद वह उसे दिखाना चाहती थी कि मैं भी गेहूं का आटा खाती हूं। अमर यह रहस्य क्या जाने- बोला- अच्छा तो आटा निकाल दे, मैं गूंथ दूं।

सलोनी ने हैरान होकर कहा-तू कैसा लड़का है, भाई बाहर जाकर क्यों नहीं बैठता-

उसे वह दिन याद आए, जब उसके बच्चे उसे अम्मां-अम्मां कहकर घेर लेते थे और वह उन्हें डांटती थी। उस उजड़े हुए घर में आज एक दिया जल रहा था पर कल फिर वही अंधेरा हो जाएगा। वही सन्नाटा। इस युवक की ओर क्यों उसकी इतनी ममता हो रही थी- कौन जाने कहां से आया है, कहां जाएगा पर यह जानते हुए भी अमर का सरल बालकों का-सा निष्कपट व्यवहार, उसका बार-बार घर में आना और हरेक काम करने को तैयार हो जाना, उसकी भूखी मातृ-भावना को सींचता हुआ-सा जान पड़ता था, मानो अपने ही सिधारे हुए बालकों की प्रतिध्वनि कहीं दूर से उसके कानों में आ रही है।

एक बालक लालटेन लिए कंधो पर एक दरी रखे आया और दोनों चीजें उसके पास रखकर बैठ गया। अमर ने पूछा- दरी कहां से लाए-

'काकी ने तुम्हारे लिए भेजी है। वही काकी, जो अभी आई थीं।'

अमर ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा-अच्छा, तुम उनके भतीजे हो तुम्हारी काकी कभी तुम्हें मारती तो नहीं

बालक सिर हिलाकर बोला-कभी नहीं। वह तो हमें खेलाती है। दुरजन को नहीं खेलाती वह बड़ा बदमाश है।

अमर ने मुस्कराकर पूछा-कहां पढ़ने जाते हो-

बालक ने नीचे का होंठ सिकोड़कर कहा-कहां जाएं, हमें कौन पढ़ाए- मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा दोनों को लेकर गए थे। पंडितजी ने नाम लिख लिया पर हमें सबसे अलग बैठाते थे सब लड़के हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।

अमर की इच्छा हुई, चौधरी से जाकर मिले। कोई स्वाभिमानी आदमी मालूम होता है। पूछा-तुम्हारे दादा क्या कर रहे हैं-

बालक ने लालटेन से खेलते हुए कहा-बोतल लिए बैठे हैं। भुने चने धारे हैं, बस अभी बक-झक करेंगे, खूब चिल्लाएंगे, किसी को मारेंगे, किसी को गालियां देंगे। दिन भर कुछ नहीं बोलते। जहां बोतल चढ़ाई कि बक चले।

अमर ने इस वक्त उनसे मिलना उचित न समझा।

सलोनी ने पुकारा-भैया, रोटी तैयार है, आओ गरम-गरम खा लो।

अमरकान्त ने हाथ-मुंह धोया और अंदर पहुंचा। पीतल की थाली में रोटियां थीं, पथरी में दही, पत्तो पर आचार, लोटे में पानी रखा हुआ था। थाली पर बैठकर बोला-तुम भी क्यों नहीं खातीं-

'तुम खा लो बेटा, मैं फिर खा लूंगी।'

'नहीं, मैं यह न मानूंगा। मेरे साथ खाओ।'

'रसोई जूठी हो जाएगी कि नहीं?'

'हो जाने दो। मैं ही तो खाने वाला हूं।'

'रसोई में भगवान् रहते हैं। उसे जूठी न करनी चाहिए।'

'तो मैं भी बैठा रहूंगा।'

'भाई, तू बड़ा खराब लड़का है।'

रसोई में दूसरी थाली कहाँ थी- सलोनी ने हथेली पर बाजरे की रोटियां ले लीं और रसोई के बाहर निकल आई। अमर ने बाजरे की रोटियां देख लीं। बोला-यह न होगा, काकी। मुझे तो यह फुलके दे दिए, आप मजेदार रोटियां उड़ा रही हैं।

'तू क्या बाजरे की रोटियां खाएगा बेटा- एक दिन के लिए आ पड़ा, तो बाजरे की रोटियां खिलाऊँ?'

'मैं तो मेहमान नहीं हूं। यही समझ लो कि तुम्हारा खोया हुआ बालक आ गया है।'

'पहले दिन उस लड़के की भी मेहमानी की जाती है। मैं तुम्हारी क्या मेहमानी करूंगी, बेटा रूखी रोटियां भी कोई मेहमानी है- न दारू, न सिकार।'

'मैं तो दारू-शिकार छूता भी नहीं, काकी।'

अमरकान्त ने बाजरे की रोटियों के लिए ज्यादा आग्रह न किया। बुढ़िया को और दुःख होता। दोनों खाने लगे। बुढ़िया यह बात सुनकर बोली-इस उमिर में तो भगतई नहीं अच्छी लगती, बेटा यही तो खाने-पीने के दिन हैं। भगतई के लिए तो बुढ़ापा है ही।'

'भगत नहीं हूं, काकी मेरा मन नहीं चाहता।'

'मां-बाप भगत रहे होंगे।'

'हां, वह दोनों जने भगत थे।'

'अभी दोनों हैं न?'

'अम्मां तो मर गई, दादा हैं। उनसे मेरी नहीं पटती।'

'तो घर से रूठकर आए हो?'

'एक बात पर दादा से कहा-सुनी हो गई। मैं चला आया।'

'घरवाली तो है न?'

'हां, वह भी है।'

'बेचारी रो-रोकर मरी जाती होगी। कभी चिट्ठी-पत्तार लिखते हो?'

'उसे भी मेरी परवाह नहीं है, काकी बड़े घर की लड़की है, अपने भोग-विलास में मग्न है। मैं कहता हूं, चल किसी गांव में खेती-बारी करें। उसे शहर अच्छा लगता है।'

अमरकान्त भोजन कर चुका, तो अपनी थाली उठा ली और बाहर आकर मांजने लगा। सलोनी भी पीछे-पीछे आकर बोली-तुम्हारी थाली मैं मांज देती, तो छोटी हो जाती-

अमर ने हंसकर कहा-तो क्या मैं अपनी थाली मांजकर छोटा हो जाऊंगा-

'यह तो अच्छा नहीं लगता कि एक दिन के लिए कोई आया तो थाली मांजने लगे। अपने मन में सोचते होगे, कहां इस भिखारिन के यहां ठहरा?'

अमरकान्त के दिल पर चोट न लगे, इसलिए वह मुस्कराई।

अमर ने मुग्ध होकर कहा-भिखारिन के सरल, पवित्र स्नेह में जो सुख मिला, वह माता की गोद के सिवा और कहीं नहीं मिल सकता था, काकी ।

उसने थाली धो धाकर रख दी और दरी बिछाकर जमीन पर लेटने ही जा रहा था कि पंद्रह-बीस लड़कों का एक दल आकर खड़ा हो गया। दो-तीन लड़कों के सिवाय और किसी की देह पर साबुत कपड़े न थे। अमरकान्त कौतूहल से उठ बैठा, मानो कोई तमाशा होने वाला है।

जो बालक अभी दरी लेकर आया था, आगे बढ़कर बोला-इतने लड़के हैं हमारे गांव में। दो-तीन लड़के नहीं आए, कहते थे वह कान काट लेंगे।

अमरकान्त ने उठकर उन सभी को कतार में खड़ा किया और एक-एक का नाम पूछा। फिर बोले-तुममें से जो-जो रोज हाथ-मुंह धोता है, अपना हाथ उठाए।

किसी लड़के ने हाथ न उठाया। यह प्रश्न किसी की समझ में न आया।

अमर ने आश्चर्य से कहा-ऐ तुममें से कोई रोज हाथ-मुंह नहीं धोता-

सभी ने एक-दूसरे की ओर देखा। दरी वाले लड़के ने हाथ उठा दिया। उसे देखते ही दूसरों ने भी हाथ उठा दिए।

अमर ने फिर पूछा-तुम में से कौन-कौन लड़के रोज नहाते हैं, हाथ उठाएं।

पहले किसी ने हाथ न उठाया। फिर एक-एक करके सबने हाथ उठा दिए। इसलिए नहीं कि सभी रोज नहाते थे, बल्कि इसलिए कि वे दूसरों से पीछे न रहें।

सलोनी खड़ी थी। बोली-तू तो महीने भर में भी नहीं नहाता रे, जंगलिया तू क्यों हाथ उठाए हुए है-

जंगलिया ने अपमानित होकर कहा-तो गूदड़ ही कौन रोज नहाता है। भुलई, पुन्नू, घसीटे, कोई भी तो नहीं नहाता।

सभी एक-दूसरे की कलाई खोलने लगे।

अमर ने डांटा-अच्छा, आपस में लड़ो मत। मैं एक बात पूछता हूं, उसका जवाब दो। रोज मुंह-हाथ धोना अच्छी बात है या नहीं-

सभी ने कहा-अच्छी बात है।

'और नहाना?'

सभी ने कहा-अच्छी बात है।

'मुंह से कहते हो या दिल से?'

'दिल से।'

'बस जाओ। मैं दस-पांच दिन में फिर आऊंगा और देखूंगा कि किन लड़कों ने झूठा वादा किया था, किसने सच्चा।'

लड़के चले गए, तो अमर लेटा। तीन महीने लगातार घूमते-घूमते उसका जी ऊब उठा था। कुछ विश्राम करने का जी चाहता था। क्यों न वह इसी गांव में टिक जाय- यहां उसे कौन जानता है- यहीं उसका छोटा-सा घर बन गया। सकीना उस घर में आ गई, गाय-बैल और अंत में नींद भी आ गई।

दो

अमरकान्त सवेरे उठा, मुंह-हाथ धोकर गंगा-स्नान किया और चौधरी से मिलने चला। चौधरी का नाम गूदड़ था। इस गांव में कोई-जमींदार न रहता था। गूदड़ का द्वार ही चौपाल का काम देता था। अमर ने देखा, नीम के पेड़ के नीचे एक तख्त पड़ा हुआ है। दो-तीन बांस की खाटें, दो-तीन पुआल के गद्वे। गूदड़ की उम्र साठ के लगभग थी मगर अभी टांठा था। उसके सामने उसका बड़ा लड़का पयाग बैठा एक जूता सी रहा था। दूसरा लड़का काशी बैलों को सानी-पानी कर रहा था। मुन्नी गोबर निकाल रही थी। तेजा और दुरजन दौड़-दौड़कर कुएं से पानी ला रहे थे। जरा पूरब की ओर हटकर दो औरतें बरतन मांज रही थीं। यह दोनों गूदड़ की बहुएं थीं।

अमर ने चौधरी को राम-राम किया और एक पुआल की गददी पर बैठ गया। चौधरी ने पित्भाव से उसका स्वागत किया-मजे में खाट पर बैठो, भैया मुन्नी ने रात ही कहा था। अभी आज तो नहीं जा रहे हो- दो-चार दिन रहो, फिर चले जाना। मुन्नी तो कहती थी, तुमको कोई काम मिल जाय तो यहीं टिक जाओगे।

अमर ने सकुचाते हुए कहा-हां, कुछ विचार तो ऐसा मन में आया था।

गूदड़ ने नारियल से धुआं निकालकर कहा-काम की कौन कमी है- घास भी कर लो, तो रुपये रोज की मजूरी हो जाए। नहीं जूते का काम है। तलियां बनाओ, चरसे बनाओ, मेहनत करने वाला आदमी भूखों नहीं मरता। धोली की मजूरी कहीं नहीं गई।

यह देखकर कि अमर को इन दोनों में कोई तजबीज पसंद नहीं आई, उसने एक तीसरी तजबीज पेश की-खेती-बारी की इच्छा हो तो कर लो। सलोनी भाभी के खेत हैं। तब तक वही जोतो।

पयाग ने सूआ चलाते हुए कहा-खेती की झंझट में न पड़ना, भैया चाहे खेत में कुछ हो या न हो, लगान जरूर दो। कभी ओला-पाला कभी सूखा-बूड़ा। एक-न-एक बला सिर पर सवार रहती है। उस पर कहीं बैल मर गया या खलिहान

में आग लग गई तो सब कुछ स्वाहा। घास सबसे अच्छी। न किसी के नौकर न चाकर, न किसी का लेना न देना। सबेरे खुरपी उठाई और दोपहर तक लौट आए।

काशी बोला-मजूरी, मजूरी है किसानी, किसानी है, मजूर लाख हो, तो मजूर कहलाएगा। सिर पर घास लिए चले जा रहे हैं। कोई इधर से पुकारता है-ओ घासवाले कोई उधर से। किसी की मेंड़ पर घास कर लो, तो गालियां मिलें। किसानी में मरजाद है।

पयाग का सूआ चलना बंद हो गया-मरजाद ले के चाटो। इधर-उधर से कमा के लाओ वह भी खेती में झोंक दो।

चौधरी ने फैसला किया-घाटा-नफा तो हर एक रोजगार में है, भैया बड़े-बड़े सेठों का दिवाला निकल जाता है। खेती बराबर कोई रोजगार नहीं जो कमाई और तकदीर अच्छी हो। तुम्हारे यहां भी नजर-नजराने का यही हाल है, भैया-

अमर बोला-हां, दादा सभी जगह यही हाल है कहीं ज्यादा कहीं कम। सभी गरीबों का लहू चूसते हैं।

चौधरी ने स्नेह का सहारा लिया-भगवान् ने छोटे-बड़े का भेद क्यों लगा दिया, इसका मरम समझ में नहीं आता- उनके तो सभी लड़के हैं। फिर सबको एक आंख से क्यों नहीं देखते-

पयाग ने शंका-समाधन की-पूरब जनम का संस्कार है। जिसने जैसे करम किए, वैसे फल पा रहा है।

चौधरी ने खंडन किया-यह सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जिसमें गरीबों को अपनी दसा पर संतोष रहे और अमीरों के राग-रंग में किसी तरह की बाधा न पड़े। लोग समझते रहें कि भगवान् ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोस पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल-बच्चे तक काम में लगे रहें और पेट भर भोजन न मिले और एक-एक अफसर को दस-दस हजार की तलब मिले। दस तोड़े रुपये हुए। गधो से भी न उठे।

अमर ने मुस्कराकर कहा-तुम तो दादा नास्तिक हो।

चौधरी ने दीनता से कहा-बेटा, चाहे नास्तिक कहो, चाहे मूरख कहो पर दिल पर चोट लगती है, तो मुंह से आह निकलती ही है। तुम तो पढ़े-लिखे हो जी-

'हां, कुछ पढ़ा तो है।'

'अंगरेजी तो न पढ़ी होगी?'

'नहीं, कुछ अंग्रेजी भी पढ़ी है।'

चौधरी प्रसन्न होकर बोले-तब तो भैया, हम तुम्हें न जाने देंगे। बाल-बच्चों को बुला लो और यहीं रहो। हमारे बाल-बच्चे भी कुछ पढ़ जाएंगे। फिर सहर भेज देंगे। वहां जात-पांत-बिरादरी कौन पूछता है। लिखा दिया हम छत्तारी हैं।

अमर मुस्कराया-और जो पीछे से भेद खुल गया-

चौधरी का जवाब तैयार था-तो हम कह देंगे, हमारे पुरबज छत्तारी थे, हालांकि अपने को छत्तारी-बंस कहते लाज आती है। सुनते हैं, छत्तारी लोगों ने मुसलमान बादशाहों को अपनी बेटियां ब्याही थीं। अभी कुछ जलपान तो न किया होगा, भैया- कहा गया तेजा जा, बहू से कुछ जलपान करने को ले आ। भैया, भगवान् का नाम लेकर यहीं टिक जाओ। तीन-चार बीघे सलोनी के पास है। दो बीघे हमारे साझे कर लेना। इतना बहुत है। भगवान् दें तो खाए न चुके।

लेकिन जब सलोनी बुलाई गई और उससे चौधरी ने यह प्रस्ताव किया, तो वह बिचक उठी। कठोर मुद्रा से बोली- तुम्हारी मंसा है, अपनी जमीन इनके नाम करा दूं और मैं हवा खाऊं, यही तो-

चौधरी ने हंसकर कहा-नहीं-नहीं, जमीन तेरे ही नाम रहेगी, पगली यह तो खाली जोतेंगे। यही समझ ले कि तू इन्हें बटाई पर दे रही है।

सलोनी ने कानों पर हाथ रखकर कहा-भैया, अपनी जगह-जमीन मैं किसी के नाम नहीं लिखती। यों हमारे पाहुने हैं, दो-चार-दस दिन रहें। मुझसे जो कुछ होगा, सेवा-सत्कार करूंगी। तुम बटाई पर लेते हो, तो ले लो। जिसको कभी देखा न सुना, न जान न पहचान, उसे कैसे बटाई पर दे दूं-

पयाग ने चौधरी की ओर तिरस्कार-भाव से देखकर कहा-भर गया मन, या अभी नहीं। कहते हो औरतें मूर्ख होती हैं। यह चाहें हमको-तुमको खड़े-खड़े बेच लावें। सलोनी काकी मुंह की ही मीठी हैं।

सलोनी तिनक उठी-हां जी, तुम्हारे कहने से अपने पुरखों की जमीन छोड़ दूं। मेरे ही पेट का लड़का, मुझी को चराने चला है।

काशी ने सलोनी का पक्ष लिया-ठीक तो कहती हैं, बेजाने-सुने आदमी को अपनी जमीन कैसे सौंप दें-

अमरकान्त को इस विवाद में दार्शनिक आनंद आ रहा था। मुस्कराकर बोला-हां, काकी, तुम ठीक कहती हो। परदेसी आदमी का क्या भरोसा-

मुन्नी भी द्वार पर खड़ी यह बातें सुन रही थी, बोली-पगला गई हो क्या, काकी- तुम्हारे खेत कोई सिर पर उठा ले जाएगा- फिर हम लोग तो हैं ही। जब तुम्हारे साथ कोई कपट करेगा, तो हम पूछेंगे नहीं-

किसी भड़के हुए जानवर को बहुत से आदमी घेरने लगते हैं, तो वह और भी भड़क जाता है। सलोनी समझ रही थी, यह सब-के-सब मिलकर मुझे लुटवाना चाहते हैं। एक बार नहीं करके, फिर हां न की। वेग से चल खड़ी हुई।

पयाग बोला-चुड़ैल है, चुड़ैल।

अमर ने खिसियाकर कहा-तुमने नाहक उससे कहा, दादा मुझे क्या, यह गांव न सही और गांव सही।

मुन्नी का चेहरा फक हो गया।

गूदड़ बोले-नहीं भैया, कैसी बातें करते हो तुम। मेरे साझीदार बनकर रहो। महन्तजी से कहकर दो-चार बीघे का और बंदोबस्त करा दूंगा। तुम्हारी झोंपड़ी अलग बन जाएगी। खाने-पीने की कोई बात नहीं। एक भला आदमी तो गांव में हो जायेगा। नहीं, कभी एक चपरासी गांव में आ गया, तो सबकी सांस नीचे-ऊपर होने लगती है।

आधा घंटे में सलोनी फिर लौटी और चौधरी से बोली-तुम्हीं मेरे खेत क्यों बटाई पर नहीं ले लेते-

चौधरी ने घुड़ककर कहा-मुझे नहीं चाहिए। धारे रह अपने खेत।

सलोनी ने अमर से अपील की-भैया, तुम्हीं सोचो, मैंने कुछ बेजा कहा- बेजाने-सुने किसी को कोई अपनी चीज दे देता है-

अमर ने सांत्वना दी-नहीं काकी, तुमने बहुत ठीक किया। इस तरह विश्वास कर लेने से धोखा हो जाता है।

सलोनी को कुछ ढाढ़स हुआ-तुमसे तो बेटा, मेरी रात ही भर की जान-पहचान है न- जिसके पास मेरे खेत हैं, वह तो मेरा ही भाई-बंद है। उससे छीनकर तुम्हें दे दूं, तो वह अपने मन में क्या कहेगा- सोचो, अगर मैं अनुचित कहती हूं तो मेरे मुंह पर थप्पड़ मारो। वह मेरे साथ बेईमानी करता है, यह जानती हूं, पर है तो अपना ही हाड़-मांस। उसके मुंह की रोटी छीनकर तुम्हें दे दूं तो तुम मुझे भला कहोगे, बोलो-

सलोनी ने यह दलील खुद सोच निकाली थी या किसी ने सुझा दी थी पर इसने गूदड़ को लाजवाब कर दिया।

तीन

दो महीने बीत गए।

पूस की ठंडी रात काली कमली ओढ़े पड़ी हुई थी। ऊंचा पर्वत किसी विशाल महत्तवाकांक्षी की भांति, तारिकाओं का मुकुट पहने खड़ा था। झोंपड़ियां जैसे उसकी वह छोटी-छोटी अभिलाषाएं थीं, जिन्हें वह ठुकरा चुका था।

अमरकान्त की झोपड़ी में एक लालटेन जल रही है। पाठशाला खुली हुई है। पंद्रह-बीस लड़के खड़े अभिमन्यु की कथा सुन रहे हैं। अमर खड़ा कथा कह रहा है। सभी लड़के कितने प्रसन्न हैं। उनके पीले कपड़े चमक रहे हैं, आंखें जगमगा रही हैं। शायद वे भी अभिमन्यु जैसे वीर, वैसे हीर् कर्तव्यपरायण होने का स्वप्न देख रहे हैं। उन्हें क्या मालूम, एक दिन उन्हें दुर्योधनों और जरासंधों के सामने घुटने टेकने पड़ेंगे कितनी बार वे चक्रव्यूहों से भागने की चेष्टा करेंगे, और भाग न सकेंगे।

गूदड़ चौधरी चौपाल में बोतल और कुंजी लिए कुछ देर तक विचार में डूबे बैठे रहे। फिर कुंजी फेंक दी। बोतल उठाकर आले पर रख दी और मुन्नी को पुकारकर कहा-अमर भैया से कह, आकर खाना खा ले। इस भले आदमी को जैसे भूख ही नहीं लगती, पहर रात गई अभी तक खाने-पीने की सुधि नहीं।

मुन्नी ने बोतल की ओर देखकर कहा-तुम जब तक पी लो। मैंने तो इसीलिए नहीं बुलाया।

गूदड़ ने अरुचि से कहा-आज तो पीने को जी नहीं चाहता, बेटा कौन बड़ी अच्छी चीज है-

मुन्नी आश्चर्य से चौधरी की ओर ताकने लगी। उसे आए यहां तीन साल से अधिक हुए। कभी चौधरी को नागा करते नहीं देखा, कभी उनके मुंह से ऐसी विराग की बात नहीं सुनी। सशंक होकर बोली-आज तुम्हारा जी अच्छी नहीं है क्या, दादा-

चौधरी ने हंसकर कहा-जी क्यों नहीं अच्छा है- मंगाई तो थी पीने ही के लिए पर अब जी नहीं चाहता। अमर भैया की बात मेरे मन में बैठ गई। कहते हैं-जहां सौ में अस्सी आदमी भूखों मरते हों, वहां दारु पीना गरीब का रक्त पीने के बराबर है। कोई दूसरा कहता, तो न मानता पर उनकी बात न जाने क्यों दिल में बैठ जाती है-

मुन्नी चिंतित हो गई-तुम उनके कहने में न आओ, दादा अब छोड़ना तुम्हें अवगुन करेगा। कहीं देह में दरद न होने लगे।

चौधरी ने इन विचारों को जैसे तुच्छ समझकर कहा-चाहे दरद हो, चाहे बाई हो, अब पीऊंगा नहीं। जिंदगी में हजारों रुपये की दारु पी गया। सारी कमाई नसे में उड़ा दी। उतने रुपये से कोई उपकार का काम करता, तो गांव का भला होता और जस भी मिलता। मूरख को इसी से बुरा कहा है। साहब लोग सुना है, बहुत पीते हैं पर उनकी बात निराली है। यहां राज करते हैं। लूट का धन मिलता है, वह न पिएं, तो कौन पीए- देखती है, अब कासी और पयाग को भी कुछ लिखने-पढ़ने का चस्का लगने लगा है।

पाठशाला बंद हुई। अमर तेजा और दुरजन की उंगली पकड़े हुए आकर चौधरी से बोला-मुझे तो आज देर हो गई है दादा, तुमने खा-पी लिया न-

चौधरी स्नेह में डूब गए-हां, और क्या, मैं ही तो पहर रात से जुता हुआ हूं मैं ही तो जूते लेकर रिसीकेस गया था। इस तरह जान दोगे, तो मुझे तुम्हारी पाठशाला बंद करनी पड़ेगी।

अमर की पाठशाला में अब लड़कियां भी पढ़ने लगी थीं। उसके आनंद का पारावार न था।

भोजन करके चौधरी सोए। अमर चलने लगा, तो मुन्नी ने कहा-आज तो लाला तुमने बड़ा भारी पाला मारा। दादा ने आज एक घूंट भी नहीं पी।

अमर उछलकर बोला-कुछ कहते थे-

'तुम्हारा जस गाते थे, और क्या कहते- मैं तो समझती थी, मरकर ही छोड़ेंगे पर तुम्हारा उपदेस काम कर गया ।'

अमर के मन में कई दिन से मुन्नी का वृत्तांत पूछने की इच्छा हो रही थी पर अवसर न पाता था। आज मौका पाकर उसने पूछा-तुम मुझे नहीं पहचानती हो लेकिन मैं तुम्हें पहचानता हूं।

मुन्नी के मुख का रंग उड़ गया। उसने चुभती हुई आंखों से अमर को देखकर कहा-तुमने कह दिया, तो मुझे याद आ रहा है। तुम्हें कहीं देखा है।

'काशी के मुकदमे की बात याद करो।'

'अच्छा, हां, याद आ गया। तुम्हीं डॉक्टर साहब के साथ रुपये जमा करते फिरते थे मगर तुम यहां कैसे आ गए?'

'पिताजी से लड़ाई हो गई। तुम यहां कैसे पहुंचीं और इन लोगों के बीच में कैसे आ पड़ीं?'

मुन्नी घर में जाती हुई बोली-फिर कभी बताऊंगी पर तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, यहां किसी से कुछ न कहना।

अमर ने अपनी कोठरी में जाकर बिछावन के नीचे से धोतियों का एक जोड़ा निकाला और सलोनी के घर पहुंचा। सलोनी भीतर पड़ी नींद को बुलाने के लिए गा रही थी। अमर की आवाज सुनकर टट्टी खोल दी और बोली-क्या है बेटा- आज तो बड़ा अंधेरा है। खाना खा चुके- मैं तो अभी चरखा कात रही थी। पीठ दुखने लगी, तो आकर पड़ रही।

अमर ने धोतियों का जोड़ा निकालकर कहा-मैं यह जोड़ा लाया हूं। इसे ले लो। तुम्हारा सूत पूरा हो जाएगा, तो मैं ले लूंगा।

सलोनी उस दिन अमर पर अविश्वास करने के कारण उससे सकुचाती थी। ऐसे भले आदमी पर उसने क्यों अविश्वास किया। लजाती हुई बोली-अभी तुम क्यों लाए भैया, सूत कत जाता, तो ले आते।

अमर के हाथ में लालटेन थी। बुढ़िया ने जोड़ा ले लिया और उसकी तहों को खोलकर ललचाई हुई आंखों से देखने लगी। सहसा वह बोल उठी-यह तो दो हैं बेटा, मैं दो लेकर क्या करूंगी। एक तुम ले जाओ ।

अमरकान्त ने कहा-तुम दोनों रख लो, काकी एक से कैसे काम चलेगा-

सलोनी को अपने जीवन के सुनहरे दिनों में भी दो धोतियां मयस्सर न हुई थीं। पति और पुत्र के राज में भी एक धोती से ज्यादा कभी न मिली। और आज ऐसी सुंदर दो-दो साड़ियां मिल रही हैं, जबरदस्ती दी जा रही हैं। उसके

अंतःकरण से मानो दूध की धारा बहने लगी। उसका सारा वैधाव्य, सारा मात्त आशीर्वाद बनकर उसके एक-एक रोम को स्पंदित करने लगा।

अमरकान्त कोठरी से बाहर निकल आया। सलोनी रोती रही।

अपनी झोंपड़ी में आकर अमर कुछ अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। फिर अपनी डायरी लिखने बैठ गया। उसी वक्त चौधरी के घर का द्वार खुला और मुन्नी कलसा लिए पानी भरने निकली। इधर लालटेन जलती देखकर वह इधर चली आई, और द्वार पर खड़ी होकर बोली-अभी सोए नहीं लाला, रात तो बहुत हो गई।

अमर बाहर निकलकर बोला-हां अभी नींद नहीं आई। क्या पानी नहीं था-

'हां, आज सब पानी उठ गया। अब जो प्यास लगी, तो कहीं एक बूंद नहीं।'

'लाओ, मैं खींच ला दूं। तुम इस अंधेरी रात में कहां जाओगी?'

'अंधेरी रात में शहर वालों को डर लगता है। हम तो गांव के हैं।'

'नहीं मुन्नी, मैं तुम्हें न जाने दूंगा।'

'तो क्या मेरी जान तुम्हारी जान से प्यारी है?'

'मेरी जैसी एक लाख जानें तुम्हारी जान पर न्यौछावर हैं।'

मुन्नी ने उसकी ओर अनुरक्त नेत्रों से देखा-तुम्हें भगवान् ने मेहरिया क्यों नहीं बनाया, लाला- इतना कोमल हृदय तो किसी मर्द का नहीं देखा। मैं तो कभी-कभी सोचती हूं, तुम यहां न आते, तो अच्छा होता।

अमर मुस्कराकर बोला-मैंने तुम्हारे साथ बुराई की है, मुन्नी-

मुन्नी कांपते हुए स्वर में बोली-बुराई नहीं की- जिस अनाथ बालक का कोई पूछने वाला न हो, उसे गोद और खिलौने और मिठाइयों का चस्का डाल देना क्या बुराई नहीं है- यह सुख पाकर क्या वह बिना लाड़-प्यार के रह सकता है-

अमर ने करुण स्वर में कहा-अनाथ तो मैं था, मुन्नी तुमने मुझे गोद और प्यार का चस्का डाल दिया। मैंने तो रो-रोकर तुम्हें दिक ही किया है।

मुन्नी ने कलसा जमीन पर रख दिया और बोली-मैं तुमसे बातों में न जीतूंगी लाला लेकिन तुम न थे, तब मैं बड़े आनंद से थी। घर का धंधा करती थी, रूखा-सूखा खाती थी और सो रहती थी। तुमने मेरा वह सुख छीन लिया। अपने मन में कहते होंगे, बड़ी निर्लज्ज नार है। कहो, जब मर्द औरत हो जाए, तो औरत को मर्द बनना ही पड़ेगा। जानती हूं, तुम मुझसे भागे-भागे फिरते हो, मुझसे गला छुड़ाते हो। यह भी जानती हूं, तुम्हें पा नहीं सकती। मेरे ऐसे भाग्य कहां- पर छोड़ूंगी नहीं। मैं तुमसे और कुछ नहीं मांगती। बस, इतना ही चाहती हूं कि तुम मुझे अपनी समझो। मुझे मालूम हो कि मैं भी स्त्री हूं, मेरे सिर पर भी कोई है, मेरी जिंदगी भी किसी के काम आ सकती है।

अमर ने अब तक मुन्नी को उसी तरह देखा था, जैसे हरेक युवक किसी सुंदरी युवती को देखता है-प्रेम से नहीं, केवल रसिक भाव से पर आत्म-समर्पण ने उसे विचलित कर दिया। दुधार गाय के भरे हुए थनों को देखकर हम प्रसन्न होते हैं-इनमें कितना दूध होगा केवल उसकी मात्रा का भाव हमारे मन में आ जाता है। हम गाय को पकड़कर दुहने के लिए तैयार नहीं हो जाते लेकिन कटोरे में दूध का सामने आ जाना दूसरी बात है। अमर ने दूध के कटोरे की ओर हाथ बढ़ा

दिया-आओ, हम-तुम कहीं चलें, मुन्नी वहां मैं कहूंगा यह मेरी...

मुन्नी ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया और बोली-बस, और कुछ न कहना। मर्द सब एक-से होते हैं। मैं क्या कहती थी, तुम क्या समझ गए- मैं तुमसे सगाई नहीं करूंगी, तुम्हारी रखेली भी नहीं बनूंगी। तुम मुझे अपनी चेरी समझते रहो, यही मेरे लिए बहुत है।

मुन्नी ने कलसा उठा लिया और कुएं की ओर चल दी। अमर रमणी-हृदय का यह अद्भुत रहस्य देखकर स्तंभित हो गया था।

सहसा मुन्नी ने पुकारा-लाला, ताजा पानी लाई हूं। एक लोटा लाऊं-

पीने की इच्छा होने पर भी अमर ने कहा-अभी तो प्यास नहीं है, मुन्नी ।

चार

तीन महीने तक अमर ने किसी को खत न लिखा। कहीं बैठने की मुहलत ही न मिली। सकीना का हाल जानने के लिए हृदय तड़प-तड़पकर रह जाता था। नैना की भी याद आ जाती थी। बेचारी रो-रोकर मरी जाती होगी। बच्चे का हंसता हुआ फूल-सा मुखड़ा याद आता रहता था पर कहीं अपना पता-ठिकाना हो तब तो खत लिखे। एक जगह तो रहना नहीं होता था। यहां आने के कई दिन बाद उसने तीन खत लिखे-सकीना, सलीम और नैना के नाम। सकीना का पत्र सलीम के लिफाफे में बंद कर दिया था। आज जवाब आ गए हैं। डाकिया अभी दे गया है। अमर गंगा-तट पर एकांत में जाकर इन पत्रों को पढ़ रहा है। वह नहीं चाहता, बीच में कोई बाधा हो, लड़के आ-आकर पूछें-किसका खत है।

नैना लिखती है-'भला, आपको इतने दिनों के बाद मेरी याद तो आई। मैं आपको इतना कठोर न समझती थी। आपके बिना इस घर में कैसे रहती हूं, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि आप, आप हैं, और मैं, मैं साढ़े चार महीने और आपका एक पत्र नहीं कुछ खबर नहीं आंखों से कितना आंसू निकल गया, कह नहीं सकती। रोने के सिवा आपने और काम ही क्या छोड़ा आपके बिना मेरा जीवन इतना सूना हो जाएगा, मुझे यह न मालूम था।

'आपके इतने दिनों की चुप्पी का कारण मैं समझती हूं, पर वह आपका भ्रम है भैया आप मेरे भाई हैं। मेरे वीरन हैं। राजा हों तो मेरे भाई हैं, रंक हों तो मेरे भाई हैं संसार आप पर हंसे, सारे देश में आपकी निंदा हो, पर आप मेरे भाई हैं। आज आप मुसलमान या ईसाई हो जाएं, तो क्या आप मेरे भाई न रहेंगे- जो नाता भगवान् ने जोड़ दिया है, क्या उसे आप तोड़ सकते हैं- इतना बलवान् मैं आपको नहीं समझती। इससे भी प्यारा और कोई नाता संसार में है, मैं नहीं समझती। मां में केवल वात्सल्य है। बहन में क्या है, नहीं कह सकती, पर वह वात्सल्य से कोमल अवश्य है। मां अपराध का दंड भी देती है। बहन क्षमा का रूप है। भाई न्याय करे, अन्याय करे, डांटे या प्यार करे, मान करे, अपमान करे, बहन के पास क्षमा के सिवा और कुछ नहीं है। वह केवल उसके स्नेह की भूखी है।

'जब से आप गए हैं, किताबों की ओर ताकने की इच्छा नहीं होती। रोना आता है। किसी काम में जी नहीं लगता। चरखा भी पड़ा मेरे नाम को रो रहा है। बस, अगर कोई आनंद की वस्तु है तो वह मुन्नी है। वह मेरे गले का हार हो गया है। क्षण-भर को भी नहीं छोड़ता। इस वक्त सो गया है, तब यह पत्र लिख सकी हूं, नहीं उसने चित्रलिपि में वह पत्र लिखा होता, जिसको बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं समझ सकते। भाभी को उससे अब उतना स्नेह नहीं रहा। आपकी चर्चा

वह कभी भूलकर भी नहीं करती। धर्म-चर्चा और भक्ति से उन्हें विशेष प्रेम हो गया है। मुझसे भी बहुत कम बोलती हैं। रेणुकादेवी उन्हें लेकर लखनऊ जाना चाहती थीं, पर वहां नहीं गईं। एक दिन उनकी गऊ का विवाह था। शहर के हजारों देवताओं का भोज हुआ। हम लोग भी गए थे। यहां के गऊशाले के लिए उन्होंने दस हजार रुपये दान किए हैं।

'अब दादाजी का हाल सुनिए वह आजकल एक ठाकुरद्वारा बनवा रहे हैं। जमीन तो पहले ही ले चुके थे। पत्थर जमा हो रहा है। ठाकुरद्वारे की बुनियाद रखने के लिए राजा साहब को निमंत्रण दिया जाएगा। न जाने क्यों दादा अब किसी पर क्रोध नहीं करते। यहां तक कि जोर से बोलते भी नहीं। दाल में नमक तेज हो जाने पर जो थाली पटक देते थे, अब चाहे कितना ही नमक पड़ जाय, बोलते भी नहीं। सुनती हूं, असामियों पर भी उतनी सख्ती नहीं करते। जिस दिन बुनियाद पड़ेगी, बहुत से असामियों का बकाया मुआफ भी करेंगे। पठानिन को अब पांच की जगह पच्चीस रुपये मिलने लगे हैं। लिखने को तो बहुत-सी बातें हैं पर लिखूंगी नहीं। आप अगर यहां आए तो छिपकर आइएगा क्योंकि लोग झल्लाए हुए हैं। हमारे घर कोई नहीं आता-जाता।'

दूसरा खत सलीम का है : 'मैंने तो समझा था, तुम गंगाजी में डूब मरे और तुम्हारे नाम को, प्याज की मदद से, दो-तीन कतरे आंसू बहा दिए थे और तुम्हारी देह की नजात के लिए एक बरहमन को एक कौड़ी खैरात भी कर दी थी मगर यह मालूम करके रंज हुआ कि आप जिंदा हैं और मेरा मातम बेकार हुआ। आंसुओं का तो गम नहीं, आंखों को कुछ फायदा ही हुआ, मगर उस कौड़ी का जरूर गम है। भले आदमी, कोई पांच-पांच महीने तक यों खामोशी अख्तियार करता है खैरियत यही है कि तुम मौजूद नहीं हो। बड़े कौमी खादिम की दुम बने हो। जो आदमी अपने प्यारे दोस्तों से इतनी बेवफाई करे, वह कौम की खिदमत क्या खाक करेगा-

'खुदा की कसम रोज तुम्हारी याद आती थी। कॉलेज जाता हूं, जी नहीं लगता। तुम्हारे साथ कॉलेज की रौनक चली गई। उधर अब्बाजान सिविल सर्विस की रट लगा-लगाकर और भी जान लिए लेते हैं। आखिर कभी आओगे भी, या काले पानी की सजा भोगते रहोगे-

'कॉलेज के हाल साबिक दस्तूर हैं-वही ताश हैं, वही लेक्चरों से भागना है, वही मैच हैं। हां, कन्वोकेशन का ऐडेंस अच्छा रहा। वाइस चांसलर ने सादा जिंदगी पर जोर दिया। तुम होते, तो उस ऐडेंस का मजा उठाते। मुझे फीका मालूम होता था। सादा जिंदगी का सबक तो सब देते हैं पर कोई नमूना बनकर दिखाता नहीं। यह जो अनगिनती लेक्चरार और प्रोफेसर हैं, क्या सब-के-सब सादा जिंदगी के नमूने हैं- वह तो लिविंग का स्टैंडर्ड ऊंचा कर रहे हैं, तो फिर लड़के भी क्यों न ऊंचा करें, क्यों न बहती गंगा में हाथ धोवें- वाइस चांसलर साहब, मालूम नहीं सादगी का सबक अपने स्टाफ को क्यों नहीं देते- प्रोफेसर भाटिया के पास तीस जोड़े जूते हैं और बाज-बाज पचास रुपये के हैं। खैर, उनकी बात छोड़ो। प्रोफेसर चक्रवर्ती तो बड़े किफायतशार मशहूर हैं। जोई न जाता, अल्ला मियां से नाता। फिर भी जानते हो कितने नौकर हैं उनके पास- कुल बारह तो भाई, हम लोग तो नौजवान हैं, हमारे दिलों में नया शौक है, नए अरमान हैं। घर वालों से मांगेंगे न देंगे, तो लड़ेंगे, दोस्तों से कर्ज लेंगे, दूकानदारों की खुशामद करेंगे, मगर शान से रहेंगे जरूर। वह जहन्नुम में जा रहे हैं, तो हम भी जहन्नुम जाएंगे मगर उनके पीछे-पीछे।

'सकीना का हाल भी कुछ सुनना चाहते हो- मामा को बीसों ही बार भेजा, कपड़े भेजे, रुपये भेजे पर कोई चीज न ली। मामा कहती हैं, दिन-भर एकाध चपाती खा ली, तो खा ली, नहीं चुपचाप पड़ी रहती है। दादी से बोलचाल बंद है। कल तुम्हारा खत पाते ही उसके पास भेज दिया था। उसका जवाब जो आया, उसकी हू-ब-हू नकल यह है। असली खत उस वक्त देखने को पाओगे, जब यहां आओगे :

'बाबूजी, आपको मुझ बदनसीब के कारण यह सजा मिली, इसका मुझे बड़ा रंज है। और क्या कहूं- जीती हूं और आपको याद करती हूं। इतना अरमान है कि मरने के पहले एक बार आपको देख लेती लेकिन इसमें भी आपकी बदनामी ही है, और मैं तो बदनाम हो ही चुकी। कल आपका खत मिला, तब से कितनी बार सौदा उठ चुका है कि आपके पास चली जाऊं। क्या आप नाराज होंगे- मुझे तो यह खौफ नहीं है। मगर दिल को समझाऊंगी और शायद कभी मरुंगी भी नहीं। कुछ देर तो गुस्से के मारे तुम्हारा खत न खोला। पर कब तक- खत खोला, पढ़ा, रोई, फिर पढ़ा, फिर रोई। रोने में इतना मजा है कि जी नहीं भरता। अब इंतजार की तकलीफ नहीं झेली जाती। खुदा आपको सलामत रखे।

'देखा, यह खत कितना दर्दनाक है मेरी आंखों में बहुत कम आंसू आते हैं लेकिन यह खत देखकर जब्त न कर सका। कितने खुशनसीब हो तुम।'

अमर ने सिर उठाया तो उसकी आंखों में नशा था वह नशा जिसमें आलस्य नहीं, स्फूर्ति है लालिमा नहीं, दीप्ति है उन्माद नहीं, विस्मृति नहीं, जागृति है। उसके मनोजगत में ऐसा भूकंप कभी न आया था। उसकी आत्मा कभी इतनी उदार इतनी विशाल, इतनी प्रफुल्ल न थी। आंखों के सामने दो मूर्तियां खड़ी हो गईं, एक विलास में डूबी हुई, रत्नों से अलंकृत, गर्व में चूर दूसरी सरल माधुर्य से भूषित, लज्जा और विनय से सिर झुकाए हुए। उसका प्यासा हृदय उस खुशबूदार मीठे शरबत से हटकर इस शीतल जल की ओर लपका। उसने पत्र के उस अंश को फिर पढ़ा, फिर आवेश में जाकर गंगा-तट पर टहलने लगा। सकीना से कैसे मिले- यह ग्रामीण जीवन उसे पसंद आया- कितनी सुकुमार है, कितनी कोमल वह और कठोर जीवन- कैसे आकर उसकी दिलजोई करे। उसकी वह सूरत याद आई, जब उसने कहा था-बाबूजी, मैं भी चलती हूं। ओह कितना अनुराग था। किसी मजूर को गड़ड़ा खोदते-खोदते जैसे कोई रत्न मिल जाए और वह अपने अज्ञान में उसे कांच का टुकड़ा ही समझ रहा हो।

इतना अरमान है कि मरने के पहले आपको देख लेती'-यह वाक्य जैसे उसके हृदय में चिमट गया था। उसका मन जैसे गंगा की लहरों पर तैरता हुआ सकीना को खोज रहा था। लहरों की ओर तन्मयता से ताकते-ताकते उसे मालूम हुआ मैं बहा जा रहा हूं। वह चौंककर घर की तरफ चला। दोनों आंखें तर, नाक पर लाली और गालों पर आर्द्रता।

पांच

गांव में एक आदमी सगाई लाया है। उस उत्सव में नाच, गाना, भोज हो रहा है। उसके द्वार पर नगड़ियां बज रही हैं गांव भर के स्त्री, पुरुष, बालक जमा हैं और नाच शुरू हो गया है। अमरकान्त की पाठशाला आज बंद है। लोग उसे भी खींच लाए हैं।

पयाग ने कहा-चलो भैया, तुम भी कुछ करतब दिखाओ। सुना है, तुम्हारे देस में लोग खूब नाचते हैं।

अमर ने जैसे क्षमा-सी मांगी-भाई, मुझे तो नाचना नहीं आता।

उसकी इच्छा हो रही है कि नाचना आता, तो इस समय सबको चकित कर देता।

युवकों और युवतियों के जोड़ बंधो हुए हैं। हरेक जोड़ दस-पंद्रह मिनट तक थिरककर चला जाता है। नाचने में कितना उन्माद, कितना आनंद है, अमर ने न समझा था।

एक युवती घूंघट बढ़ाए हुए रंगभूमि में आती है इधर से पयाग निकलता है। दोनों नाचने लगते हैं। युवती के अंगों में

इतनी लचक है, उसके अंग-विलास में भावों की ऐसी व्यंजना है कि लोग मुग्ध हुए जाते हैं।

इस जोड़ के बाद दूसरा जोड़ आता है। युवक गठीला जवान है, चौड़ी छाती, उस पर सोने की मुहर, कछनी काछे हुए। युवती को देखकर अमर चौंक उठा। मुन्नी है। उसने घेरदार लहंगा पहना है, गुलाबी ओढ़नी ओढ़ी है, और पांव में पैजनियां बंध ली हैं। गुलाबी घूंघट में दोनों कपोल फूलों की भांति खिले हुए हैं। दोनों कभी हाथ-में-हाथ मिलाकर, कभी कमर पर हाथ रखकर, कभी कूल्हों को ताल से मटकाकर नाचने में उन्मत्ता हो रहे हैं। सभी मुग्ध नेत्रों से इन कलाविदों की कला देख रहे हैं। क्या फुरती है, क्या लचक है और उनकी एक-एक लचक में, एक-एक गति में कितनी मार्मिकता, कितनी मादकता दोनों हाथ-में-हाथ मिलाए, थिरकते हुए रंगभूमि के उस सिरे तक चले जाते हैं और क्या मजाल कि एक गति भी बेताल हो।

पयाग ने कहा-देखते हो भैया, भाभी कैसा नाच रही है- अपना जोड़ नहीं रखती।

अमर ने विरक्त मन से कहा-हां, देख तो रहा हूं।

'मन हो, तो उठो, मैं उस लौंडे को बुला लूं।'

'नहीं, मुझे नहीं नाचना है।'

मुन्नी नाच रही थी कि अमर उठकर घर चला आया। यह बेशर्मी अब उससे नहीं सही जाती।

एक क्षण के बाद मुन्नी ने आकर कहा-तुम चले क्यों आए, लाला- क्या मेरा नाचना अच्छा न लगा-

अमर ने मुंह फेरकर कहा-क्या मैं आदमी नहीं हूं कि अच्छी चीज को बुरा समझूं-

मुन्नी और समीप आकर बोली-तो फिर चले क्यों आए-

अमर ने उदासीन भाव से कहा-मुझे एक पंचायत में जाना है। लोग बैठे मेरी राह देख रहे होंगे। तुमने क्यों नाचना बंद कर दिया-

मुन्नी ने भोलेपन से कहा-तुम चले आए, तो नाचकर क्या करती-

अमर ने उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा-सच्चे मन से कह रही हो मुन्नी-

मुन्नी उससे आंखें मिलाकर बोली-मैं तो तुमसे कभी झूठ नहीं बोली।

'मेरी एक बात मानो। अब फिर कभी मत नाचना।'

मुन्नी उदास होकर बोली-तो तुम इतनी जरा-सी बात पर रूठ गए- जरा किसी से पूछो, मैं आज कितने दिनों के बाद नाची हूं। दो साल से मैं नफाड़े के पास नहीं गई। लोग कह-कहकर हार गए। आज तुम्हीं ले गए, और अब उलटे तुम्हीं नाराज होते हो।

मुन्नी घर में चली गई। थोड़ी देर बाद काशी ने आकर कहा-भाभी, तुम यहां क्या कर रही हो- वहां सब लोग तुम्हें बुला रहे हैं।

मुन्नी ने सिरदर्द का बहाना किया।

काशी आकर अमर से बोला-तुम क्यों चले आए, भैया- क्या गंवारों का नाच-गाना अच्छा न लगा।

अमर ने कहा-नहीं जी, यह बात नहीं। एक पंचायत में जाना है देर हो रही है।

काशी बोला-भाभी नहीं जा रही है। इसका नाच देखने के बाद अब दूसरों का रंग नहीं जम रहा है। तुम चलकर कह दो, तो साइत चली जाए। कौन रोज-रोज यह दिन आता है। बिरादरी वाली बात है। लोग कहेंगे, हमारे यहां काम आ पड़ा, तो मुंह छिपाने लगे।

अमर ने धर्म-संकट में पड़कर कहा-तुमने समझाया नहीं-

फिर अंदर जाकर कहा-मुझसे नाराज हो गई, मुन्नी-

मुन्नी आंगन में आकर बोली-तुम मुझसे नाराज हो गए हो कि मैं तुमसे नाराज हो गई-

'अच्छा, मेरे कहने से चलो।'

'जैसे बच्चे मछलियों को खेलाते हैं, उसी तरह तुम मुझे खेला रहे हो, लाला जब चाहा रूला दिया जब चाहा हंसा दिया।'

'मेरी भूल थी, मुन्नी क्षमा करो।'

'लाला, अब तो मुन्नी तभी नाचेगी, जब तुम उसका हाथ पकड़कर कहोगे-चलो हम-तुम नाचें। वह अब और किसी के साथ न नाचेगी।'

'तो अब नाचना सीखूं?'

मुन्नी ने अपनी विजय का अनुभव करके कहा-मेरे साथ नाचना चाहोगे, तो आप सीखोगे।

'तुम सिखा दोगी?'

'तुम मुझे रोना सिखा रहे हो, मैं तुम्हें नाचना सिखा दूंगी।'

'अच्छा चलो।'

कॉलेज के सम्मेलनों में अमर कई बार ड्रामा खेल चुका था। स्टेज पर नाचा भी था, गाया भी था पर उस नाच और इस नाच में बड़ा अंतर था। वह विलासियों की कर्म-क्रीड़ा थी, यह श्रमिकों की स्वच्छंद केलि। उसका दिल सहमा जाता था।

उसने कहा-मुन्नी, तुमसे एक वरदान मांगता हूं।

मुन्नी ने ठिठककर कहा-तो तुम नाचोगे नहीं-

'यही तो तुमसे वरदान मांग रहा हूं।'

अमर 'ठहरो-ठहरो' कहता रहा पर मुन्नी लौट पड़ी।

अमर भी अपनी कोठरी में चला आया, और कपड़े पहनकर पंचायत में चला गया। उसका सम्मान बढ़ रहा है। आस-पास के गांवों में भी जब कोई पंचायत होती है, तो उसे अवश्य बुलाया जाता है।

N%

सलोनी काकी ने अपने घर की जगह पाठशाले के लिए दे दी है। लड़के बहुत आने लगे हैं। उस छोटी-सी कोठरी में जगह नहीं है। सलोनी से किसी ने जगह मांगी नहीं, कोई दबाव भी नहीं डाला गया। बस, एक दिन अमर और चौधरी बैठे बातें कर रहे थे कि नई शाला कहां बनाई जाए, गांव में तो बैलों के बंधने की जगह नहीं। सलोनी उनकी बातें सुनती रही। फिर एकाएक बोल उठी-मेरा घर क्यों नहीं ले लेते- बीस हाथ पीछे खाली जगह पड़ी है। क्या इतनी जमीन में तुम्हारा काम नहीं चलेगा-

दोनों आदमी चकित होकर सलोनी का मुंह ताकने लगे।

अमर ने पूछा-और तू रहेगी कहां, काकी-

सलोनी ने कहा-उंह मुझे घर-द्वार लेकर क्या करना है बेटा- तुम्हारी ही कोठरी में आकर एक कोने में पड़ी रहूंगी।

गूदड़ ने मन में हिसाब लगाकर कहा-जगह तो बहुत निकल आएगी।

अमर ने सिर हिलाकर कहा-मैं काकी का घर नहीं लेना चाहता। महन्तजी से मिलकर गांव के बाहर पाठशाला बनवाऊंगा।

काकी ने दुःखित होकर कहा-क्या मेरी जगह में कोई छूत लगी है, भैया-

गूदड़ ने फैसला कर दिया। काकी का घर मदरसे के लिए ले लिया जाए। उसी में एक कोठरी अमर के लिए भी बना दी जाय। काकी अमर की झोंपड़ी में रहेगी। एक किनारे गाय-बैल बंध लेगी। एक किनारे पड़े रहेंगी।

आज सलोनी जितनी खुश है, उतनी शायद और कभी न हुई हो। वही बुढ़िया, जिसके द्वार पर कोई बैल बंध देता, तो लड़ने को तैयार हो जाती, जो बच्चों को अपने द्वार पर गोलियां न खेलने देती, आज अपने पुरखों का घर देकर अपना जीवन सफल समझ रही है। यह कुछ असंगत-सी बात है पर दान कृपण ही दे सकता है। हां, दान का हेतु ऐसा होना चाहिए जो उसकी नजर में उसके मर-मर संचे हुए धन के योग्य हो।

चटपट काम शुरू हो जाता है। घरों से लकड़ियां निकल आईं, रस्सी निकल आई, मजूर निकल आए, पैसे निकल आए। न किसी से कहना पड़ा, न सुनना। वह उनकी अपनी शाला थी। उन्हीं के लड़के-लड़कियां तो पढ़ती थीं। और इन छः-सात महीने में ही उन पर शिक्षा का कुछ असर भी दिखाई देने लगा था। वह अब साफ रहते हैं, झूठ कम बोलते हैं, झूठे बहाने कम करते हैं, गालियां कम बकते हैं, और घर से कोई चीज चुरा कर नहीं ले जाते। न उतनी जिद ही करते हैं। घर का जो कुछ काम होता है, उसे शौक से करते हैं। ऐसी शाला की कौन मदद न करेगा-

फागुन का शीतल प्रभात सुनहरे वस्त्र पहने पहाड़ पर खेल रहा था। अमर कई लड़कों के साथ गंगा-स्नान करके लौटा पर आज अभी तक कोई आदमी काम करने नहीं आया। यह बात क्या है- और दिन तो उसके स्नान करके लौटने के पहले ही कारीगर आ जाते थे। आज इतनी देर हो गई और किसी का पता नहीं।

सहसा मुन्नी सिर पर कलसा रखे आकर खड़ी हो गई। वही शीतल, सुनहरा प्रभात उसके गेहुएं मुखड़े पर मचल रहा था।

अमर ने मुस्कराकर कहा-यह देखो, सूरज देवता तुम्हें घूर रहे हैं।

मुन्नी ने कलसा उतारकर हाथ में ले लिया और बोली-और तुम बैठे देख रहे हो-

फिर एक क्षण के बाद उसने कहा-तुम तो जैसे आजकल गांव में रहते ही नहीं हो। मदरसा क्या बनने लगा, तुम्हारे दर्शन ही दुर्लभ हो गए। मैं डरती हूं, कहीं तुम सनक न जाओ।

'मैं तो दिन-भर यहीं रहता हूं, तुम अलबत्ता जाने कहां रहती हो- आज यह सब आदमी कहां चले गए- एक भी नहीं आया।'

'गांव में है ही कौन?'

'कहां चले गए सब?'

'वाह तुम्हें खबर ही नहीं- पहर रात सिरोमनपुर के ठाकुर की गाय मर गई, सब लोग वहीं गए हैं। आज घर-घर सिकार बनेगा।'

'अमर ने घृणा-सूचक भाव से कहा-मरी गाय?'

'हमारे यहां भी तो खाते हैं, यह लोग।'

'क्या जाने- मैंने कभी नहीं देखा। तुम तो...'

मुन्नी ने घृणा से मुंह बनाकर कहा-मैं तो उधर ताकती भी नहीं।

'समझाती नहीं इन लोगों को?'

'उंह समझाने से माने जाते हैं, और मेरे समझाने से।'

अमरकान्त की वंशगत वैष्णव वृत्ति इस घृणित, पिशाच कर्म से जैसे मतलाने लगी। उसे सचमुच मतली हो आई। उसने छूत-छात और भेदभाव को मन से निकाल डाला था पर अखा? से वही पुरानी घृणा बनी हुई थी। और वह दस-ग्यारह महीने से इन्हीं मुरदाखोरों के घर भोजन कर रहा है।

'आज मैं खाना नहीं खाऊंगा, मुन्नी ।'

'मैं तुम्हारा भोजन अलग पका दूंगी।'

'नहीं मुन्नी जिस घर में वह चीज पकेगी, उस घर में मुझसे न खाया जायेगा।'

सहसा शोर सुनकर अमर ने आंखें उठाई, तो देखा कि पंद्रह-बीस आदमी बांस की बल्लियों पर उस मृतक गाय को लादे चले आ रहे हैं। सामने कई लड़के उछलते-कूदते तालियां बजाते चले आते थे।

कितना बीभत्स दृश्य था। अमर वहां खड़ा न रह सका। गंगा-तट की ओर भागा।

मुन्नी ने कहा-तो भाग जाने से क्या होगा- अगर बुरा लगता है तो जाकर समझाओ।

'मेरी बात कौन सुनेगा, मुन्नी?'

'तुम्हारी बात न सुनेंगे, तो और किसकी बात सुनेंगे, लाला?'

'और जो किसी ने न माना?'

'और जो मान गए आओ, कुछ-कुछ बद लो।'

'अच्छा क्या बदती हो?'

'मान जायें तो मुझे एक अच्छी-सी साड़ी ला देना।'

'और न माने, तो तुम मुझे क्या दोगी?'

'एक कौड़ी।'

इतनी देर में वह लोग और समीप आ गए। चौधरी सेनापति की भांति आगे-आगे लपके चले आते थे।

मुन्नी ने आगे बढ़कर कहा-ला तो रहे हो लेकिन लाला भागे जा रहे हैं।

गूदड़ ने कौतूहल से पूछा-क्यों क्या हुआ है-

'यही गाय की बात है। कहते हैं, मैं तुम लोगों के हाथ का पानी न पिऊंगा।'

पयाग ने अकड़कर कहा-बकने दो। न पिऊंगे हमारे हाथ का पानी, तो हम छोटे न हो जाएंगे।

काशी बोला-आज बहुत दिनों के बाद सिकार मिला उसमें भी यह बाधा॥

गूदड़ ने समझौते के भाव से कहा-आखिर कहते क्या हैं-

मुन्नी झुंझलाकर बोली-अब उन्हीं से जाकर पूछो। जो चीज और किसी ऊंची जात वाले नहीं खाते, उसे हम क्यों खाएं, इसी से तो लोग हमें नीच समझते हैं।

पयाग ने आवेश में कहा-तो हम कौन किसी बाम्हन-ठाकुर के घर बेटी ब्याहने जाते हैं- बाम्हनों की तरह किसी के द्वार पर भीख मांगने तो नहीं जाते यह तो अपना-अपना रिवाज है।

मुन्नी ने डांट बताई-यह कोई अच्छी बात है कि सब लोग हमें नीच समझें, जीभ के सवाद के लिए-

गाय वहीं रख दी गई। दो-तीन आदमी गंडासे लेने दौड़े। अमर खड़ा देख रहा था कि मुन्नी मना कर रही है पर कोई उसकी सुन नहीं रहा। उसने उधर से मुंह फेर लिया जैसे उसे कै हो जाएगी। मुंह फेर लेने पर भी वही दृश्य उसकी आंखों में फिरने लगा। इस सत्य को वह कैसे भूल जाय कि उससे पचास कदम पर मुरदा गाय की बोटियां की जा रही हैं। वह उठकर गंगा की ओर भागा।

गूदड़ ने उसे गंगा की ओर जाते देखकर चिंतित भाव से कहा-वह तो सचमुच गंगा की ओर भागे जा रहे हैं। बड़ा सनकी आदमी है। कहीं डूब-डाब न जाय।

पयाग बोला-तुम अपना काम करो, कोई नहीं डूबे-डाबेगा। किसी को जान इतनी भारी नहीं होती।

मुन्नी ने उसकी ओर कोप-दृष्टि से देखा-जान उन्हें प्यारी होती है, जो नीच हैं और नीच बने रहना चाहते हैं। जिसमें लाज है, जो किसी के सामने सिर नहीं नीचा करना चाहता, वह ऐसी बात पर जान भी दे सकता है।

पयाग ने ताना मारा-उनका बड़ा पच्छ कर रही हो भाभी, क्या सगाई की ठहर गई है-

मुन्नी ने आहत कंठ से कहा-दादा, तुम सुन रहे हो इनकी बातें, और मुंह नहीं खोलते। उनसे सगाई ही कर लूंगी, तो क्या तुम्हारी हंसी हो जाएगी- और जब मेरे मन में वह बात आ जाएगी, तो कोई रोक भी न सकेगा। अब इसी बात पर मैं देखती हूं कि कैसे घर में सिकार जाता है। पहले मेरी गर्दन पर गंडासा चलेगा।

मुन्नी बीच में घुसकर गाय के पास बैठ गई और ललकार बोली-अब जिसे गंडासा चलाना हो चलाए, बैठी हूं।

पयाग ने कातर भाव से कहा-हत्या के बल खेलती-खाती हो और क्या ।

मुन्नी बोली-तुम्हीं जैसों ने बिरादरी को इतना बदनाम कर दिया है उस पर कोई समझाता है, तो लड़ने को तैयार होते हो।

गूदड़ चौधरी गहरे विचार में डूबे खड़े थे। दुनिया में हवा किस तरफ चल रही है, इसकी भी उन्हें कुछ खबर थी। कई बार इस विषय पर अमरकान्त से बातचीत कर चुके थे। गंभीर भाव से बोले-भाइयो, यहां गांव के सब आदमी जमा हैं। बताओ, अब क्या सलाह है-

एक चौड़ी छाती वाला युवक बोला-सलाह जो तुम्हारी है, वही सबकी है। चौधरी तो तुम हो।

पयाग ने अपने बाप को विचलित होते देख, दूसरों को ललकारकर कहा-खड़े मुंह क्या ताकते हो, इतने जने तो हो। क्यों नहीं मुन्नी का हाथ पकड़कर हटा देते- मैं गंडासा लिए खड़ा हूं।

मुन्नी ने क्रोध से कहा-मेरा ही मांस खा जाओगे, तो कौन हर्ज है- वह भी तो मांस ही है।

और किसी को आगे बढ़ते न देखकर पयाग ने खुद आगे बढ़कर मुन्नी का हाथ पकड़ लिया और उसे वहां से घसीटना चाहता था कि काशी ने उसे जोर से धक्का दिया और लाल आंखें करके बोला-भैया, अगर उसकी देह पर हाथ रखा, तो खून हो जाएगा-कहे देता हूं। हमारे घर में इस गऊ मांस की गंध तक न जाने पाएगी। आए वहां से बड़े वीर बनकर ।

चौड़ी छाती वाला युवक मध्यस्थ बनकर बोला-मरी गाय के मांस में ऐसा कौन-सा मजा रखा है, जिसके लिए सब जने मरे जा रहे हो। गड़ढा खोदकर मांस फाड़ दो, खाल निकाल लो। वह भी जब अमर भैया की सलाह हो तो। सारी दुनिया हमें इसीलिए तो अछूत समझती है कि हम दारू-सराब पीते हैं, मुरदा मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं। और हममें क्या बुराई है- दारू-सराब हमने छोड़ दी है- रहा चमड़े का काम, उसे कोई बुरा नहीं कह सकता, और अगर कहे भी तो हमें उसकी परवाह नहीं। चमड़ा बनाना-बेचना कोई बुरा काम नहीं है।

गूदड़ ने युवक की ओर आदर की दृष्टि से देखा-तुम लोगों ने भूरे की बात सुन ली। तो यही सबकी सलाह है-

भूरे बोला-अगर किसी को उजर करना हो तो करे।

एक बूढ़े ने कहा-एक तुम्हारे या हमारे छोड़ देने से क्या होता है- सारी बिरादरी तो खाती है।

भूरे ने जवाब दिया-बिरादरी खाती है, बिरादरी नीच बनी रहे । अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है।

गूदड़ ने भूरे को संबोधित किया-तुम ठीक कहते हो, भूरे लड़कों का पढ़ना ही ले लो। पहले कोई भेजता था अपने लड़कों को - मगर जब हमारे लड़के पढ़ने लगे, तो दूसरे गांवों के लड़के भी आ गए।

काशी बोला-मुरदा मांस न खाने के अपराध का दंड बिरादरी हमें न देगी। इसका मैं जुम्मा लेता हूं। देख लेना आज की बात सांझ तक चारों ओर फैल जाएगी, और वह लोग भी यही करेंगे। अमर भैया का कितना मान है। किसकी मजाल है कि उनकी बात को काट दे।

पयाग ने देखा, अब दाल न गलेगी, तो सबको धिक्कारकर बोला-अब मेहरियों का राज है, मेहरियां जो कुछ न करें वह

थोड़ा।

यह कहता हुआ वह गंडासा लिए घर चला गया।

गूदड़ लपके हुए गंगा की ओर चले और एक गोली के टप्पे से पुकारकर बोले-यहां क्यों खड़े हो भैया, चलो घर, सब झगड़ा तय हो गया।

अमर विचार-मग्न था। आवाज उसके कानों तक न पहुंची।

चौधरी ने और समीप जाकर कहा-यहां कब तक खड़े रहोगे भैया-

'नहीं दादा, मुझे यहीं रहने दो। तुम लोग वहां काट-कूट करोगे, मुझसे देखा न जाएगा। जब तुम फुर्सत पा जाओगे, तो मैं आ जाऊंगा।'

'बहू कहती थी, तुम हमारे घर खाने को भी नहीं कहते हो?'

'हां दादा, आज तो न खाऊंगा, मुझे कै हो जाएगी।'

'लेकिन हमारे यहां तो आए दिन यही धंधा लगा रहता है।'

'दो-चार दिन के बाद मेरी भी आदत पड़ जाएगी।'

'तुम हमें मन में राक्षस समझ रहे होगे?'

अमर ने छाती पर हाथ रखकर कहा-नहीं दादा, मैं तो तुम लोगों से कुछ सीखने, तुम्हारी कुछ सेवा करके अपना उधार करने आया हूं। यह तो अपनी-अपनी प्रथा है। चीन एक बहुत बड़ा देश है। वहां बहुत से आदमी बुद्ध भगवान् को मानते हैं। उनके धर्म में किसी जानवर को मारना पाप है। इसलिए वह लोग मरे हुए जानवर ही खाते हैं। कुत्तो, बिल्ली, गीदड़ किसी को भी नहीं छोड़ते। तो क्या वह हमसे नीचे हैं- कभी नहीं। हमारे ही देश में कितने ही ब्राह्मण, क्षत्री मांस खाते हैं- वह जीभ के स्वाद के लिए जीव-हत्या करते हैं। तुम उनसे तो कहीं अच्छे हो।

गूदड़ ने हंसकर कहा-भैया, तुम बड़े बुद्धिमान हो, तुमसे कोई न जीतेगा चलो, अब कोई मुरदा नहीं खाएगा। हम लोगों ने तय कर लिया। हमने क्या तय किया, बहू ने तय किया। मगर खाल तो न फेंकनी होगी-

अमर ने प्रसन्न होकर कहा-नहीं दादा, खाल क्यों फेंकोगे- जूते बनाना तो सबसे बड़ी सेवा है। मगर क्या भाभी बहुत बिगड़ी थीं-

गूदड़ बोला-बिगड़ी ही नहीं थी भैया, वह तो जान देने को तैयार थी। गाय के पास बैठ गई और बोली-अब चलाओ गंडासा, पहला गंडासा मेरी गर्दन पर होगा फिर किसकी हिम्मत थी कि गंडासा चलाता।

अमर का हृदय जैसे एक छलांग मारकर मुन्नी के चरणों पर लोटने लगा।

सात

कई महीने गुजर गए। गांव में फिर मुरदा मांस न आया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि दूसरे गांव के चमारों ने भी मुरदा मांस खाना छोड़ दिया। शुभ उद्योग कुछ संक्रामक होता है।

अमर की शाला अब नई इमारत में आ गई थी। शिक्षा का लोगों को कुछ ऐसा चस्का पड़ गया था कि जवान तो

जवान, बूढ़े भी आ बैठते और कुछ न कुछ सीख जाते। अमर की शिक्षा-शैली आलोचनात्मक थी। अन्य देशों की सामाजिक और राजनैतिक प्रगति, नए-नए आविष्कार, नए-नए विचार, उसके मुख्य विषय थे। देख-देशांतरों के रस्म-रिवाज, आचार-विचार की कथा सभी चाव से सुनते थे। उसे यह देखकर कभी-कभी विस्मय होता था कि ये निरक्षर लोग जटिल सामाजिक सिद्धांतों को कितनी आसानी से समझ जाते हैं। सारे गांव में एक नया जीवन प्रवाहित होता हुआ जान पड़ता। छूत-छात का जैसे लोप हो गया था। दूसरे गांवों की ऊंची जातियों के लोग भी अक्सर आ जाते थे।

दिन-भर के परिश्रम के बाद अमर लेटा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था कि मुन्नी आकर खड़ी हो गई। अमर पढ़ने में इतना लिप्त था कि मुन्नी के आने की उसको खबर न हुई। राजस्थान की वीर नारियों के बलिदान की कथा थी, उस उज्ज्वल बलिदान की जिसकी संसार के इतिहास में कहीं मिसाल नहीं है, जिसे पढ़कर आज भी हमारी गर्दन गर्व से उठ जाती है। जीवन को किसने इतना तुच्छ समझा होगा कुल-मर्यादा की रक्षा का ऐसा अलौकिक आदर्श और कहां मिलेगा- आज का बुद्धिवाद उन वीर माताओं पर चाहे जितना कीचड़ फेंक ले, हमारी श्रद्धा उनके चरणों पर सदैव सिर झुकाती रहेगी।

मुन्नी चुपचाप खड़ी अमर के मुख की ओर ताकती रही। मेघ का वह अल्पांश जो आज एक साल हुए उसके हृदय-आकाश में पंक्षी की भांति उड़ता हुआ आ गया था, धीरे-धीरे संपूर्ण आकाश पर छा गया था। अतीत की ज्वाला में झुलसी हुई कामनाएं इस शीतल छाया में फिर हरी होती जाती थीं। वह शुष्क जीवन उ?ान की भांति सौरभ और विकास से लहराने लगा है। औरों के लिए तो उसकी देवरानियां भोजन पकातीं, अमर के लिए वह खुद पकाती। बेचारे दो तो रोटियां खाते हैं, और यह गंवारिनें मोटे-मोटे लिफ्ट बनाकर रख देती हैं। अमर उससे कोई काम करने को कहता, तो उसके मुख पर आनंद की ज्योति-सी झलक उठती। वह एक नए स्वर्ग की कल्पना करने लगती-एक नए आनंद का स्वप्न देखने लगती।

एक दिन सलोनी ने उससे मुस्कराकर कहा-अमर भैया तेरे ही भाग से यहां आ गए, मुन्नी अब तेरे दिन फिरेंगे।

मुन्नी ने हर्ष को जैसे मुट्ठी में दबाकर कहा-क्या कहती हो काकी, कहां मैं, कहां वह। मुझसे कई साल छोटे होंगे। फिर ऐसे विद्वान्, ऐसे चतुर मैं तो उनकी जूतियों के बराबर भी नहीं।

काकी ने कहा था-यह सब ठीक है मुन्नी, पर तेरा जादू उन पर चल गया है यह मैं देख रही हूं। संकोची आदमी मालूम होते हैं, इससे तुझसे कुछ कहते नहीं पर तू उनके मन में समा गई है, विश्वास मान। क्या तुझे इतना भी नहीं सूझता-तुझे उनकी शर्म दूर करनी पड़ेगी।

मुन्नी ने पुलकित होकर कहा था-तुम्हारी असीस है काकी, तो मेरा मनोरथ भी पूरा हो जाएगा।

मुन्नी एक क्षण अमर को देखती रही, तब झोपड़ी में जाकर उसकी खाट निकाल लाई। अमर का ध्यान टूटा। बोला-रहने दो, मैं अभी बिछाए लेता हूं। तुम मेरा इतना दुलार करोगी मुन्नी, तो मैं आलसी हो जाऊंगा। आओ, तुम्हें हिन्दू-देवियों की कथा सुनाऊं।

'कोई कहानी है क्या?'

'नहीं, कहानी नहीं, सच्ची बात है।'

अमर ने मुसलमानों के हमले, क्षत्राणियों के जुहार और राजपूत वीरों के शौर्य की चर्चा करते हुए कहा-उन देवियों को

आग में जल मरना मंजूर था पर यह मंजूर न था कि परपुरुष की निगाह भी उन पर पड़े। अपनी आन पर मर मिटती थीं। हमारी देवियों का यह आदर्श था। आज यूरोप का क्या आदर्श है- जर्मन सिपाही फ्रांस पर चढ़ आए और पुरुषों से गांव खाली हो गए, तो फ्रांस की नारियां जर्मन सैनिकों ही से प्रेम क्रीड़ा करने लगीं।

मुन्नी नाक सिकोड़कर बोली-बड़ी चंचल हैं सब लेकिन उन स्त्रियों से जीते जी कैसे जला जाता था-

अमर ने पुस्तक बंद कर दी-बड़ा कठिन है, मुन्नी यहां तो जरा-सी चिंगारी लग जाती है, तो बिलबिला उठते हैं। तभी तो आज सारा संसार उनके नाम के आगे सिर झुकाता है। मैं तो जब यह कथा पढ़ता हूं तो रोएं खड़े हो जाते हैं। यही जी चाहता है कि जिस पवित्र-भूमि पर उन देवियों की चिताएं बनीं, उसकी राख सिर पर चढ़ाऊं, आंखों में लगाऊं और वहीं मर जाऊं।

मुन्नी किसी विचार में डूबी भूमि की ओर ताक रही थी।

अमर ने फिर कहा-कभी-कभी तो ऐसा हो जाता था कि पुरुषों को घर के माया-मोह से मुक्त करने के लिए स्त्रियां लड़ाई के पहले ही जुहार कर लेती थीं। आदमी की जान इतनी प्यारी होती है कि बूढ़े भी मरना नहीं चाहते। हम नाना कष्ट झेलकर भी जीते हैं, बड़े-बड़े ऋषि-महात्मा भी जीवन का मोह नहीं छोड़ सकते पर उन देवियों के लिए जीवन खेल था।

मुन्नी अब भी मौन खड़ी थी। उसके मुख का रंग उड़ा हुआ था, मानो कोई दुस्सह अंतर्वेदना हो रही है।

अमर ने घबराकर पूछा-कैसा जी है, मुन्नी- चेहरा क्यों उतरा हुआ है-

मुन्नी ने क्षीण मुस्कान के साथ कहा-मुझसे पूछते हो- क्या हुआ है-

'कुछ बात तो है मुझसे छिपाती हो?'

'नहीं जी, कोई बात नहीं।'

एक मिनट के बाद उसने फिर कहा-तुमसे आज अपनी कथा कहूं, सुनोगे-

'बड़े हर्ष से मैं तो तुमसे कई बार कह चुका। तुमने सुनाई ही नहीं।'

'मैं तुमसे डरती हूं। तुम मुझे नीच और क्या-क्या समझने लगोगे।'

अमर ने मानो क्षुब्ध होकर कहा-अच्छी बात है, मत कहो। मैं तो जो कुछ हूं वही रहूंगा, तुम्हारे बनाने से तो नहीं बन सकता।

मुन्नी ने हारकर कहा-तुम तो लाला, जरा-सी बात पर चिढ़ जाते हो, जभी स्त्री से तुम्हारी नहीं पटती। अच्छा लो, सुनो। जो जी मैं आए समझना-मैं जब काशी से चली, तो थोड़ी देर तक तो मुझे होश ही न रहा-कहां जाती हूं, क्यों जाती हूं, कहां से आती हूं- फिर मैं रोने लगी। अपने प्यारों का मोह सफर की भांति मन में उमड़ पड़ा। और मैं उसमें डूबने-उतराने लगी। अब मालूम हुआ, क्या कुछ खोकर चली जा रही हूं। ऐसा जान पड़ता था कि मेरा बालक मेरी गोद में आने के लिए हुमक रहा है। ऐसा मोह मेरे मन में कभी न जागा था। मैं उसकी याद करने लगी। उसका हंसना और रोना, उसकी तोतली बातें, उसका लटपटाते

हुए चलना। उसे चुप कराने के लिए चंदा मामू को दिखाना, सुलाने के लिए लोरियां सुनाना, एक-एक बात याद आने

लगी। मेरा वह छोटा-सा संसार कितना सुखमय था उस रत्न को गोद में लेकर मैं कितनी निहाल हो जाती थी, मानो संसार की संपत्ति मेरे पैरों के नीचे है। उस सुख के बदले में स्वर्ग का सुख भी न लेती। जैसे मन की सारी अभिलाषाएं उसी बालक में आकर जमा हो गई हों। अपना टूटा-डूटा झोंपड़ा, अपने मैले-कुचैले कपड़े, अपना नंगा-बूचापन, कर्ज-दाम की चिंता, अपनी दरिद्रता, अपना दुर्भाग्य, ये सभी पैने कांटे जैसे फूल बन गए। अगर कोई कामना थी, तो यह कि मेरे लाल को कुछ न होने पाए। और आज उसी को छोड़कर मैं न जाने कहां चली जा रही थी- मेरा चित्त चंचल हो गया। मन की सारी स्मृतियां सामने दौड़ने वाले वृक्षों की तरह, जैसे मेरे साथ दौड़ी चली आ रही थीं, और उन्हीं के साथ मेरा बालक भी जैसे मुझे दौड़ता चला आता था। आखिर मैं आगे न जा सकी। दुनिया हंसती है, हंसे। बिरादरी निकालती है, निकाल दे, मैं अपने लाल को छोड़कर न जाऊंगी। मेहनत-मजदूरी करके भी तो अपना निबाह कर सकती हूं। अपने लाल को आंखों से देखती तो रहूंगी। उसे मेरी गोद से कौन छीन सकता है मैं उसके लिए मरी हूं, मैंने उसे अपने रक्त से सिरजा है। वह मेरा है। उस पर किसी का अधिकार नहीं।

ज्योंही लखनऊ आया, मैं गाड़ी से उतर पड़ी। मैंने निश्चय कर लिया, लौटती गाड़ी से काशी चली जाऊंगी। जो कुछ होना होगा, होगा।

मैं कितनी देर प्लेटगार्म पर खड़ी रही, मालूम नहीं। बिजली की बत्तियों से सारा स्टेशन जगमगा रहा था। मैं बार-बार कुलियों से पूछती थी, काशी की गाड़ी कब आएगी- कोई दस बजे मालूम हुआ, गाड़ी आ रही है। मैंने अपना सामान संभाला। दिल धड़कने लगा। गाड़ी आ गई। मुसाफिर चढ़ने-उतरने लगे। कुली ने आकर कहा-असबाब जनाने डिब्बे में रखें कि मर्दाने में-

मेरे मुंह से आवाज न निकली।

कुली ने मेरे मुंह की ओर ताकते हुए फिर पूछा-जनाने डिब्बे में रख दूं असबाब-

मैंने कातर होकर कहा-मैं इस गाड़ी से न जाऊंगी।

'अब दूसरी गाड़ी दस बजे दिन को मिलेगी।'

'मैं उसी गाड़ी से जाऊंगी।'

'तो असबाब बाहर ले चलूं या मुसाफिरखाने में?'

'मुसाफिरखाने में।'

अमर ने पूछा-तुम उस गाड़ी से चली क्यों न गई-

मुन्नी कांपते हुए स्वर में बोली-न जाने कैसा मन होने लगा- जैसे कोई मेरे हाथ-पांव बांधे लेता हो। जैसे मैं गऊ-हत्या करने जा रही हूं। इन कोढ़ भरे हाथों से मैं अपने लाल को कैसे उठाऊंगी। मुझे अपने पति पर क्रोध आ रहा था। वह मेरे साथ आया क्यों नहीं- अगर उसे मेरी परवाह होती, तो मुझे अकेली आने देता- इस गाड़ी से वह भी आ सकता था। जब उसकी इच्छा नहीं है, तो मैं भी न जाऊंगी। और न जाने कौन-कौन-सी बातें मन में आकर मुझे जैसे बलपूर्वक रोकने लगीं। मैं मुसाफिरखाने में मन मारे बैठी थी कि एक मर्द अपनी औरत के साथ आकर मेरे ही समीप दरी बिछाकर बैठ गया। औरत की गोद में लगभग एक साल का बालक था। ऐसा सुंदर बालक ऐसा गुलाबी रंग, ऐसी कटोरे-सी आंखें, ऐसी मक्खन-सी देह मैं तन्मय होकर देखने लगी और अपने-पराए की सुधि भूल गई। ऐसा मालूम

हुआ यह मेरा बालक है। बालक मां की गोद से उतरकर धीरे-धीरे रेंगता हुआ मेरी ओर आया। मैं पीछे हट गई। बालक फिर मेरी तरफ चला। मैं दूसरी ओर चली गई। बालक ने समझा, मैं उसका अनादर कर रही हूं। रोने लगा। फिर भी मैं उसके पास न आई। उसकी माता ने मेरी ओर रोष-भरी आंखों से देखकर बालक को दौड़कर उठा लिया पर बालक मचलने लगा और बार-बार मेरी ओर हाथ बढ़ाने लगा। पर मैं दूर खड़ी रही। ऐसा जान पड़ता था, मेरे हाथ कट गए हैं। जैसे मेरे हाथ लगाते ही वह सोने-सा बालक कुछ और हो जाएगा, उसमें से कुछ निकल जाएगा।

स्त्री ने कहा-लड़के को जरा उठा लो देवी, तुम तो ऐसे भाग रही हो जैसे वह अछूत है। जो दुलार करते हैं, उनके पास तो अभागा जाता नहीं, जो मुंह फेर लेते हैं, उनकी ओर दौड़ता है।

बाबूजी, मैं तुमसे नहीं कह सकती कि इन शब्दों ने मेरे मन को कितनी चोट पहुंचाई। कैसे समझा दूं कि मैं कलंकिनी हूं, पापिष्ठा हूं, मेरे छूने से अनिष्ट होगा, अमंगल होगा। और यह जानने पर क्या वह मुझसे फिर अपना बालक उठा लेने को कहेगी।

मैंने समीप आकर बालक की ओर स्नेह-भरी आंखों से देखा और डरते-डरते उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। सहसा बालक चिल्लाकर मां की तरफ भागा, मानो उसने कोई भयानक रूप देख लिया हो। अब सोचती हूं, तो समझ में आता है-बालकों का यही स्वभाव है पर उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ कि सचमुच मेरा रूप पिशाचिनी का-सा होगा। मैं लज्जित हो गई।

माता ने बालक से कहा-अब जाता क्यों नहीं रे, बुला तो रही हैं। कहां जाओगी बहन- मैंने हरिद्वार बता दिया। वह स्त्री-पुरुष भी हरिद्वार ही जा रहे थे। गाड़ी छूट जाने के कारण ठहर गए थे। घर दूर था। लौटकर न जा सकते थे। मैं बड़ी खुश हुई कि हरिद्वार तक साथ तो रहेगा लेकिन फिर वह बालक मेरी ओर न आया।

थोड़ी देर में स्त्री-पुरुष तो सो गए पर मैं बैठी ही रही। मां से चिमटा हुआ बालक भी सो रहा था। मेरे मन में बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि बालक को उठाकर प्यार करूं, पर दिल कांप रहा था कि कहीं बालक रोने लगे, या माता जाग जाए, तो दिल में क्या समझे- मैं बालक का फूल-सा मुखड़ा देख रही थी। वह शायद कोई स्वप्न देखकर मुस्करा रहा था। मेरा दिल काबू से बाहर हो गया। मैंने सोते हुए बालक को उठाकर छाती से लगा लिया। पर दूसरे ही क्षण मैं सचेत हो गई और बालक को लिटा दिया। उस क्षणिक प्यार में कितना आनंद था जान पड़ता था, मेरा ही बालक यह रूप धरकर मेरे पास आ गया है।

देवीजी का हृदय बड़ा कठोर था। बात-बात पर उस नन्हें-से बालक को झिड़क देतीं, कभी-कभी मार बैठती थीं। मुझे उस वक्त ऐसा क्रोध आता था कि उसे खूब डांटूं। अपने बालक पर माता इतना क्रोध कर सकती है, यह मैंने आज ही देखा।

जब दूसरे दिन हम लोग हरिद्वार की गाड़ी में बैठे, तो बालक मेरा हो चुका था। मैं तुमसे क्या कहूं बाबूजी, मेरे स्तनों में दूध भी उतर आया और माता को मैंने इस भार से भी मुक्त कर दिया।

हरिद्वार में हम लोग एक धर्मशाला में ठहरे। मैं बालक के मोह-पाश में बंधी हुई उस दंपत्ति के पीछे-पीछे फिरा करती। मैं अब उसकी लौंडी थी। बच्चे का मल-मूत्र धोना मेरा काम था, उसे दूध पिलाती, खिलाती। माता का जैसे गला छूट गया लेकिन मैं इस सेवा में मगन थी। देवीजी जितनी आलसिन और घमंडिन थीं, लालाजी उतने ही शीलवान् और दयालु थे। वह मेरी तरफ कभी आंख उठाकर भी न देखते। अगर मैं कमरे में अकेली होती, तो कभी अंदर न जाते।

कुछ-कुछ तुम्हारे ही जैसा स्वभाव था। मुझे उन पर दया आती थी। उस कर्कशा के साथ उनका जीवन इस तरह कट रहा था, मानो बिल्ली के पंजे में चूहा हो। वह उन्हें बात-बात पर झिड़कती। बेचारे खिसियाकर रह जाते।

पंद्रह दिन बीत गए थे। देवजी ने घर लौटने के लिए कहा। बाबूजी अभी वहां कुछ दिन और रहना चाहते थे। इस बात पर तकरार हो गई। मैं बरामदे में बालक को लिए खड़ी थी। देवीजी ने गरम होकर कहा-तुम्हें रहना हो तो रहो, मैं तो आज जाऊंगी। तुम्हारी आंखों रास्ता नहीं देखा है।

पति ने डरते-डरते कहा-यहां दस-पांच दिन रहने में हरज ही क्या है- मुझे तो तुम्हारे स्वास्थ्य में अभी कोई तबदीली नहीं दिखती।

'आप मेरे स्वास्थ्य की चिंता छोड़िए। मैं इतनी जल्द नहीं मरी जा रही हूं। सच कहते हो, तुम मेरे स्वास्थ्य के लिए यहां ठहरना चाहते हो?'

'और किसलिए आया था।'

'आए चाहे जिस काम के लिए हो पर तुम मेरे स्वास्थ्य के लिए नहीं ठहर रहे हो। यह प्रक्रियाएं उन स्त्रियों को पढ़ाओ, जो तुम्हारे हथकंडे न जानती हों। मैं तुम्हारी नस-नस पहचानती हूं। तुम ठहरना चाहते हो विहार के लिए, क्रीड़ा के लिए...'

बाबूजी ने हाथ जोड़कर कहा-अच्छा, अब रहने दो बिन्नी, कलंकित न करो। मैं आज ही चला जाऊंगा।

देवीजी इतनी सस्ती विजय पाकर प्रसन्न न हुईं। अभी उनके मन का गुबार तो निकलने ही नहीं पाया था। बोली-हां, चले क्यों न चलोगे, यही तो तुम चाहते थे। यहां पैसे खर्च होते हैं न ले जाकर उसी काल-कोठरी में डाल दो। कोई मरे या जिए, तुम्हारी बला से। एक मर जाएगी, तो दूसरी फिर आ जाएगी, बल्कि और नई-नवेली। तुम्हारी चांदी ही चांदी है। सोचा था, यहां कुछ दिन रहूंगी पर तुम्हारे मारे कहीं रहने पाऊं। भगवान् भी नहीं उठा लेते कि गला छूट जाए।

अमर ने पूछा-उन बाबूजी ने सचमुच कोई शरारत की थी, या मिथ्या आरोप था-

मुन्नी ने मुंह फेरकर मुस्कराते हुए कहा-लाला, तुम्हारी समझ बड़ी मोटी है। वह डायन मुझ पर आरोप कर रही थी। बेचारे बाबूजी दबे जाते थे कि कहीं वह चुड़ैल बात खोलकर न कह दे, हाथ जोड़ते थे, मिन्नतें करते थे पर वह किसी तरह रास न होती थी।

आंखें मटकाकर बोली-भगवान् ने मुझे भी आंखें दी हैं, अंधी नहीं हूं। मैं तो कमरे में पड़ी-पड़ी कराहूं और तुम बाहर गुलछर्रे उड़ाओ दिल बहलाने को कोई शगल चाहिए।

धीरे-धीरे मुझ पर रहस्य खुलने लगा। मन में ऐसी ज्वाला उठी कि अभी इसका मुंह नोच लूं। मैं तुमसे कोई परदा नहीं रखती लाला, मैंने बाबूजी की ओर कभी आंख उठाकर देखा भी न था पर यह चुड़ैल मुझे कलंक लगा रही थी। बाबूजी का लिहाज न होता, तो मैं उस चुड़ैल का मिजाज ठीक कर देती, जहां सुई न चुभे, वहां गाल चुभाए देती।

आखिर बाबूजी को भी क्रोध आया।

'तुम बिलकुल झूठ बोलती हो। सरासर झूठ।'

'मैं सरासर झूठ बोलती हूं?'

'हां, सरासर झूठ बोलती हो।'

'खा जाओ अपने बेटे की कसम।'

मुझे चुपचाप वहां से टल जाना चाहिए था लेकिन अपने इस मन को क्या करूं, जिससे अन्याय नहीं देखा जाता। मेरा चेहरा मारे क्रोध के तमतमा उठा। मैंने उसके सामने जाकर कहा-बहूजी, बस अब जबान बंद करो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैं तरह देती जाती हूं और तुम सिर चढ़ती जाती हो। मैं तुम्हें शरीफ समझकर तुम्हारे साथ ठहर गई थी। अगर जानती कि तुम्हारा स्वभाव इतना नीच है, तो तुम्हारी परछाई से भागती। मैं हरजाई नहीं हूं, न अनाथ हूं, भगवान् की दया से मेरे भी पति हैं, पुत्र है। किस्मत का खेल है कि यहां अकेली पड़ी हूं। मैं तुम्हारे पति को पैर धोने के जोग भी नहीं समझती। मैं उसे बुलाए देती हूं, तुम भी देख लो, बस आज और कल रह जाओ।

अभी मेरे मुंह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि मेरे स्वामी मेरे लाल को गोद में लिए आकर आंगन में खड़े हो गए और मुझे देखते ही लपककर मेरी तरफ चले। मैं उन्हें देखते ही ऐसी घबरा गई, मानो कोई सिंह आ गया हो, तुरंत अपनी कोठरी में जाकर भीतर से द्वार बंद कर लिए। छाती धाड़-धाड़ कर रही थी पर किवाड़ की दरार में आंख लगाए देख रही थी। स्वामी का चेहरा संवलाया हुआ था, बालों पर धूल जमी हुई थी, पीठ पर कंबल और लुटिया-डोर रखे हाथ में लंबा लट्ट लिए भौचक्के से खड़े थे।

बाबूजी ने बाहर आकर स्वामी से पूछा-अच्छा, आप ही इनके पति हैं। आप खूब आए। अभी तो वह आप ही की चर्चा कर रही थीं। आइए, कपड़े उतारिए। मगर बहन भीतर क्यों भाग गई। यहां परदेश में कौन परदा-

मेरे स्वामी को तो तुमने देखा ही है। उनके सामने बाबूजी बिलकुल ऐसे लगते थे, जैसे सांड के सामने नाटा बैल।

स्वामी ने बाबूजी को जवाब न दिया, मेरे द्वार पर आकर बोले-मुन्नी, यह क्या अंधेर करती हो- मैं तीन दिन से तुम्हें खोज रहा हूं। आज मिली भी, तो भीतर जा बैठी ईश्वर के लिए किवाड़ खोल दो और मेरी दुःख कथा सुन लो, फिर तुम्हारी जो इच्छा हो करना।

मेरी आंखों से आंसू बह रहे थे। जी चाहता था, किवाड़ खोलकर बच्चे को गोद में ले लूं।

पर न जाने मन के किसी कोने में कोई बैठा हुआ कह रहा था-खबरदार, जो बच्चे को गोद में लिया जैसे कोई प्यास से तड़पता हुआ आदमी पानी का बरतन देखकर टूटे पर कोई उससे कह दे, पानी जूठा है। एक मन कहता था, स्वामी का अनादर मत कर, ईश्वर ने जो पत्नी और माता का नाता जोड़ दिया है, वह क्या किसी के तोड़े टूट सकता है दूसरा मन कहता था, तू अब अपने पति को पति और पुत्र को पुत्र नहीं कह सकती। क्षणिक मोह के आवेश में पड़कर तू क्या उन दोनों को कलंकित कर देगी।

मैं किवाड़ छोड़कर खड़ी हो गई।

बच्चे ने किवाड़ को अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों से पीछे ढकेलने के लिए जोर लगाकर कहा-तेयाल थोलो।

यह तोतले बोल कितने मीठे थे जैसे सन्नाटे में किसी शंका से भयभीत होकर हम गाने लगते हैं, अपने शब्दों से दुकेले होने की कल्पना कर लेते हैं। मैं भी इस समय अपने उमड़ते हुए प्यार को रोकने के लिए बोल उठी-तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो- क्यों नहीं समझ लेते कि मैं मर गई- तुम ठाकुर होकर भी इतने दिल के कच्चे हो- एक तुच्छ नारी के लिए अपना कुल-मरजाद डुबाए देते हो। जाकर अपना ब्याह कर लो और बच्चे को पालो। इस जीवन में मेरा तुमसे कोई

नाता नहीं है। हां, भगवान् से यही मांगती हूं कि दूसरे जन्म में तुम फिर मुझे मिलो। क्यों मेरी टेक तोड़ रहे हो, मेरे मन को क्यों मोह में डाल रहे हो- पतिता के साथ तुम सुख से न रहोगी। मुझ पर दया करो, आज ही चले जाओ, नहीं मैं सच कहती हूं, जहर खा लूंगी।

स्वामी ने करुण आग्रह से कहा-मैं तुम्हारे लिए अपनी कुल-मर्यादा, भाई-बंध सब कुछ छोड़ दूंगा। मुझे किसी की परवाह नहीं। घर में आग लग जाए, मुझे चिंता नहीं। मैं या तो तुम्हें लेकर जाऊंगा, या यहीं गंगा में डूब मरूंगा। अगर मेरे मन में तुमसे रत्ती भर मैल हो, तो भगवान् मुझे सौ बार नरक दें। अगर तुम्हें नहीं चलना है तो तुम्हारा बालक तुम्हें सौंपकर मैं जाता हूं। इसे मारो या जिलाओ, मैं फिर तुम्हारे पास न आऊंगा। अगर कभी सुधि आए, तो चुल्लू भर पानी दे देना।

लाला, सोचो, मैं कितने बड़े संकट में पड़ी हुई थी। स्वामी बात के धनी हैं, यह मैं जानती थी। प्राण को वह कितना तुच्छ समझते हैं, यह भी मुझसे छिपा न था। फिर भी मैं अपना हृदय कठोर किए रही। जरा भी नर्म पड़ी और सर्वनाश हुआ। मैंने पत्थर का कलेजा बनाकर कहा-अगर तुम बालक को मेरे पास छोड़कर गए, तो उसकी हत्या तुम्हारे ऊपर होगी, क्योंकि मैं उसकी दुर्गति देखने के लिए जीना नहीं चाहती। उसके पालने का भार तुम्हारे ऊपर है, तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मेरे लिए जीवन में अगर कोई सुख था, तो यही कि मेरा पुत्र और स्वामी कुशल से हैं। तुम मुझसे यह सुख छीन लेना चाहते हो, छीन लो मगर याद रखो वह मेरे जीवन का आधार है।

मैंने देखा स्वामी ने बच्चे को उठा लिया, जिसे एक क्षण पहले गोद से उतार दिया था और उलटे पांव लौट पड़े। उनकी आंखों से आंसू जारी थे, और नहीं कांप रहे थे।

देवीजी ने भलमनसी से काम लेकर स्वामी को बैठाना चाहा, पूछने लगीं-क्या बात है, क्यों रूठी हुई हैं पर स्वामी ने कोई जवाब न दिया। बाबू साहब फाटक तक उन्हें पहुंचाने गए। कह नहीं सकती, दोनों जनों में क्या बातें हुईं पर अनुमान करती हूं कि बाबूजी ने मेरी प्रशंसा की होगी। मेरा दिल अब भी कांप रहा था कि कहीं स्वामी सचमुच आत्मघात न कर लें। देवियों और देवताओं की मनौतियां कर रही थी कि मेरे प्यारों की रक्षा करना।

ज्योंही बाबूजी लौटे, मैंने धीरे से किवाड़ खोलकर पूछा-किधर गए- कुछ और कहते थे-

बाबूजी ने तिरस्कार-भरी आंखों से देखकर कहा-कहते क्या, मुंह से आवाज भी तो निकले। हिचकी बांधी हुई थी। अब भी कुशल है, जाकर रोक लो। वह गंगाजी की ओर ही गए हैं। तुम इतनी दयावान होकर भी इतनी कठोर हो, यह आज ही मालूम हुआ। गरीब, बच्चों की तरह डुक-डुटकर रो रहा था।

मैं संकट की उस दशा को पहुंच चुकी थी, जब आदमी परायों को अपना समझने लगता है। डांटकर बोली-तब भी तुम दौड़े यहां चले आए। उनके साथ कुछ देर रह जाते, तो छोटे न हो जाते, और न यहां देवीजी को कोई उठा ले जाता। इस समय वह आपे में नहीं हैं, फिर भी तुम उन्हें छोड़कर भागे चले आए।

देवीजी बोलीं-यहां न दौड़े आते, तो क्या जाने मैं कहीं निकल भागती- लो, आकर घर में बैठो। मैं जाती हूं। पकड़कर घसीट न लाऊं, तो अपने बाप की नहीं।

धर्मशाला में बीसों ही यात्री टिके हुए थे। सब अपने-अपने द्वार पर खड़े यह तमाशा देख रहे थे। देवीजी ज्योंही निकलीं, चार-पांच आदमी उनके साथ हो लिए। आधा घंटे में सभी लौट आए। मालूम हुआ कि वह स्टेशन की तरफ

चले गए।

पर मैं जब तक उन्हें गाड़ी पर सवार होते न देख लूं चैन कहाँ- गाड़ी प्रातःकाल जाएगी। रात-भर वह स्टेशन पर रहेंगे। ज्योंही अंधेरा हो गया, मैं स्टेशन जा पहुंची। वह एक वृक्ष के नीचे कंबल बिछाए बैठे हुए थे। मेरा बच्चा लोटे को गाड़ी बनाकर डोर से खींच रहा था। बार-बार गिरता था और उठकर खींचने लगता था। मैं एक वृक्ष की आड़ में बैठकर यह तमाशा देखने लगी। तरह-तरह की बातें मन में आने लगीं। बिरादरी का ही तो डर है। मैं अपने पति के साथ किसी दूसरी जगह रहने लंगूं, तो बिरादरी क्या कर लेगी लेकिन क्या अब मैं वह हो सकती हूं, जो पहले थी-

एक क्षण के बाद फिर वही कल्पना। स्वामी ने साफ कहा है, उनका दिल साफ है। बातें बनाने की उनकी आदत नहीं। तो वह कोई बात कहेंगे ही क्यों, जो मुझे लगे। गड़े मुरदे उखाड़ने की उनकी आदत नहीं। वह मुझसे कितना प्रेम करते थे। अब भी उनका हृदय वही है। मैं व्यर्थ के संकोच में पड़कर उनका और अपना जीवन चौपट कर रही हूं लेकिन ...लेकिन मैं अब क्या वह हो सकती हूं, जो पहले थी- नहीं, अब मैं वह नहीं हो सकती।

पतिदेव अब मेरा पहले से अधिक आदर करेंगे। मैं जानती हूं। मैं घी का घड़ा भी लुढ़का दूंगी, तो कुछ न कहेंगे। वह उतना ही प्रेम करेंगे लेकिन वह बात कहाँ, जो पहले थी। अब तो मेरी दशा उस रोगिणी की-सी होगी, जिसे कोई भोजन रुचिकर नहीं होता।

तो फिर मैं जिंदा ही क्यों रहूँ- जब जीवन में कोई सुख नहीं, कोई अभिलाषा नहीं, तो वह व्यर्थ है। कुछ दिन और रो लिया, तो इससे क्या- कौन जानता है, क्या-क्या कलंक सहने पड़ें क्या-क्या दुर्दशा हो- मर जाना कहीं अच्छा।

यह निश्चय करके मैं उठी। सामने ही पतिदेव सो रहे थे। बालक भी पड़ा सोता था। ओह कितना प्रबल बंधन था जैसे सूम का धन हो। वह उसे खाता नहीं, देता नहीं, इसके सिवा उसे और क्या संतोष है कि उसके पास धन है। इस बात से ही उसके मन में कितना बल आ जाता है मैं उसी मोह को तोड़ने जा रही थी।

मैं डरते-डरते, जैसे प्राणों को आंखों में लिए, पतिदेव के समीप गई पर वहां एक क्षण भी खड़ी न रह सकी। जैसे लोहा खींचकर चुंबक से जा चिपटता है, उसी तरह मैं उनके मुख की ओर खिंची जा रही थी। मैंने अपने मन का सारा बल लगाकर उसका मोह तोड़ दिया और उसी आवेश में दौड़ी हुई गंगा के तट पर आई। मोह अब भी मन से चिपटा हुआ था। मैं गंगा में कूद पड़ी।

अमर ने कातर होकर कहा-अब नहीं सुना जाता, मुन्नी फिर कभी कहना।

मुन्नी मुस्कराकर बोली-वाह, अब रह क्या गया- मैं कितनी देर पानी में रही, कह नहीं सकती, जब होश आया, तो इसी घर में पड़ी हुई थी। मैं बहती चली जाती थी। प्रातःकाल चौधरी का बड़ा लड़का सुमेर गंगा नहाने गया और मुझे उठा लाया। तब से मैं यहीं हूं। अछूतों की इस झोंपड़ी में मुझे जो सुख और शांति मिली उसका बखान क्या करूं। काशी और पयाग मुझे भाभी कहते हैं, पर सुमेर मुझे बहन कहता था। मैं अभी अच्छी तरह उठने-बैठने न पाई थी कि वह परलोक सिधार गया।

अमर के मन में एक कांटा बराबर खटक रहा था। वह कुछ तो निकला पर अभी कुछ बाकी था।

'सुमेर को तुमसे प्रेम तो होगा ही?'

मुन्नी के तेवर बदल गए-हां था, और थोड़ा नहीं, बहुत था, तो फिर उसमें मेरा क्या बस- जब मैं स्वस्थ हो गई, तो एक

दिन उसने मुझसे अपना प्रेम प्रकट किया। मैंने क्रोध को हंसी में लपेटकर कहा-क्या तुम इस रूप में मुझसे नेकी का बदला चाहते हो- अगर यह नीयत है, तो मुझे फिर ले जाकर गंगा में डुबा दो। अगर इस नीयत से तुमने मेरी प्राण-रक्षा की, तो तुमने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया। तुम जानते हो, मैं कौन हूं- राजपूतनी हूं। फिर कभी भूलकर भी मुझसे ऐसी बात न कहना, नहीं गंगा यहां से दूर नहीं है। सुमेर ऐसा लज्जित हुआ कि फिर मुझसे बात तक नहीं की पर मेरे शब्दों ने उसका दिल तोड़ दिया। एक दिन मेरी पसलियों में दर्द होने लगा। उसने समझा भूत का फेर है। ओझा को बुलाने गया। नदी चढ़ी हुई थी। डूब गया। मुझे उसकी मौत का जितना दुख हुआ उतना ही अपने सगे भाई के मरने का हुआ था। नीचों में भी ऐसे देवता होते हैं, इसका मुझे यहीं आकर पता लगा। वह कुछ दिन और जी जाता, तो इस घर के भाग जाग जाते। सारे गांव का गुलाम था। कोई गाली दे, डांटे, कभी जवाब न देता।

अमर ने पूछा-तब से तुम्हें पति और बच्चे की खबर न मिली होगी-

मुन्नी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। रोते-रोते हिचकी बंध गई। फिर सिसक-सिसककर बोली-स्वामी प्रातःकाल फिर धर्मशाला में गए। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं रात को वहां नहीं गई, तो मुझे खोजने लगे। जिधर कोई मेरा पता बता देता उधर ही चले जाते। एक महीने तक वह सारे इलाके में मारे-मारे फिरे। इसी निराशा और चिंता में वह कुछ सनक गए। फिर हरिद्वार आए अब की बालक उनके साथ न था। कोई पूछता तुम्हारा लड़का क्या हुआ, तो हसने लगते। जब मैं अच्छी हो गई और चलने-फिरने लगी, तो एक दिन जी में आया, हरिद्वार जाकर देखूं, मेरी चीजें कहां गईं। तीन महीने से ज्यादा हो गए थे। मिलने की आशा तो न थी पर इसी बहाने स्वामी का कुछ पता लगाना चाहती थी। विचार था-एक चिट्ठी लिखकर छोड़ दूं। उस धर्मशाला के सामने पहुंची, तो देखा, बहुत से आदमी द्वार पर जमा हैं। मैं भी चली गई। एक आदमी की लाश थी। लोग कह रहे थे, वही पागल है, वही जो अपनी बीबी को खोजता फिरता था। मैं पहचान गई। वह मेरे स्वामी थे। यह सब बातें मुहल्ले वालों से मालूम हुईं। छाती पीटकर रह गई। जिस सर्वनाश से डरती थी, वह हो ही गया। जानती कि यह होने वाला है, तो पति के साथ ही न चली जाती। ईश्वर ने मुझे दोहरी सजा दी लेकिन आदमी बड़ा बेहया है। अब मरते भी न बना। किसके लिए मरती- खाती-पीती भी हूं, हंसती-बोलती भी हूं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। बस, यही मेरी राम-कहानी है।